इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ६ अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५११८ जुलाई २०१६

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादन सहयोग :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव-नेरी, डाकघर-खगल
जिला-हमीरपुर-१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०६४१८४-८५४१५

मूल्यः
प्रति अंक - १५.०० रुपये
वार्षिक - ६०.०० रुपये
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

स्मृति आलोक

युग-युगीन त्रिगर्त : राष्ट्रीय परिसंवाद
प्रो. मधोक जी का उद्घाटन भाषण ३

हम सब एक पथ के पथिक — ठा. रामसिंह ७

सब बातों में महान — प्रो. बलराज मधोक ११

ठाकुर जी और मधोक जी में
आत्मीयता — विश्वनाथ शेखड़ी १२

हिन्दू, हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व — प्रो. बलराज मधोक १४

संवीक्षण

पौराणिक इतिहास का वैज्ञानिक
आधार — डॉ. ठाकुर प्रसाद वर्मा २५

सिकन्दर चन्द्रगुप्त मौर्य का
समकालीन नहीं — कुंज बिहारी जालान ४०

सम्पादकीय

राष्ट्रवाचक है हिन्दू शब्द

*अपने जीवन को राष्ट्र सेवा में समर्पित करने वाले भारत के सपूतों में **प्रो. बलराज मधोक** का एक प्रतिष्ठित स्थान है। वैशाख कृष्ण १०, कलियुगाब्द ५११८, ईस्वी सन् २ मई, २०१६ को प्रो. मधोक जी ९६ वर्ष की आयु में अपना नश्वर शरीर छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए। नेरी शोध संस्थान के संस्थापक श्रेद्धय ठाकुर रामसिंह और प्रो. मधोक में परस्पर बहुत आत्मीय सम्बन्ध थे। हिमाचल प्रदेश के विख्यात ऐतिहासिक स्थल, नगरकोट कांगड़ा में आयोजित **युग युगीन त्रिगर्त** राष्ट्रीय परिसंवाद में ठाकुर जी के अनुरोध पर उद्घाटन भाषण उन्हीं का था। वह इतिहासोपयोगी भाषण इतिहास दिवाकर के इसी अंक में प्रकाशित है। **बाबा साहिब आपटे स्मारक समिति, दिल्ली** द्वारा प्रो. मधोक को **डॉ. वाकणकर पुरस्कार** से सम्मानित करने के अवसर पर ठाकुर रामसिंह जी ने मधोक जी को अपना मार्गदर्शक बतलाया। मधोक जी ने ही ठाकुर जी का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में प्रवेश करवाया था। पांच वर्ष पूर्व जब ठाकुर जी का देहान्त हुआ तो ठाकुर जी को श्रद्धांजलि देते हुए प्रो. मधोक ने कहा था – ठाकुर जी मेरे बड़े भाई थे। बेशक मैंने उन्हें संघ की शाखा में जोड़ा था, परन्तु वह सब बातों में महान् थे। उन्होंने सब प्रकार की इच्छाओं से दूर रह कर राष्ट्रीय कार्यों के लिए अपने जीवन का सर्वस्व समर्पित कर दिया था।*

*प्रो. मधोक राष्ट्रनिष्ठ उच्च कोटि के इतिहासकार थे। उनका एक ऐतिहासिक लेख **हिन्दू, हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व** इस अंक में दिया गया है। उनका मत स्पष्ट है कि हिन्दू शब्द का उद्गम भौगोलिक है और इसका अर्थ राष्ट्रवाचक है। अनेक शताब्दियों तक इसी नाम से हमारे पूर्वजों ने विदेशियों से लोहा लिया और हिन्दुस्तान को हिन्दू देश के रूप में प्रख्यात किया। इसी कारण हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान के राष्ट्रवाद का परिचायक बन गया। आवश्यकता है हिन्दुत्व स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय जीवन में प्रतिविम्बित हो। हिन्दू मज़हब नहीं, धर्म है। धर्म का अर्थ वह आचार संहिता है जो मनुष्य और मानव समाज को विशिष्टता और स्थायित्व प्रदान करती है।*

अनेक शताब्दियों तक इसी नाम से हमारे पूर्वजों ने विदेशियों से लोहा लिया और हिन्दुस्तान को हिन्दू देश के रूप में प्रख्यात किया।

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

स्मृति आलोक

युग-युगीन त्रिगर्त : राष्ट्रीय परिसंवाद

प्रो. मधोक जी का उद्घाटन भाषण

कलियुगाब्द ५१०१, चैत्र शुक्ल एकादशी से त्रयोदशी तद्नुसार २८.३.१९९८ से ३०.३.१९९८ तक हिमाचल प्रदेश के ऐतिहासिक स्थान नगरकोट कांगड़ा में भारतीय इतिहास संकलन समिति की ओर से युग-युगीन त्रिगर्त विषय पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन हुआ। इस परिसंवाद में प्रो. बलराज मधोक जी का अविस्मरणीय उद्घाटन भाषण यहां प्रस्तुत है।

जिस वर्तमान में हम रह रहे हैं उसकी जड़े भूतकाल में हैं। हमारी आज जो मानसिक सोच है उसको बनाने में हमारे इतिहास का स्थान है। इसलिए इतिहास का महत्त्व है। हमारे देश में हमेशा इतिहास को महत्त्व दिया गया है। राजाओं के लिए इतिहास का ज्ञान अनिवार्य माना गया था। अंग्रेज इसके महत्त्व को समझते थे। इसीलिए उन्होंने ICS, जिसको उन्होंने अपना Steal Frame बनाया, उसमें २-३ परचे इतिहास के रखे थे। हुकूमत चलाने के लिए इतिहास का ज्ञान विशेष महत्त्व रखता है। मगर दुर्भाग्य से हमने इतिहास की ओर ध्यान नहीं दिया। आज़ादी के बाद हमने अपने इतिहास को जानने की कोशिश नहीं की। इतिहास के ज्ञान के अभाव में हम बहुत सी भूल कर बैठे हैं। हमने चीन के बारे में भूल की, कश्मीर के बारे में भूल की, पाकिस्तान के बारे में भूल की, अभी और जो भूलें हो रही हैं, उनका प्रमुख कारण भी इतिहास के ज्ञान का अभाव ही है। हमने अपने इतिहास से कुछ नहीं सीखा। इसलिए अपने देश के इतिहास पर विशेष ध्यान देना, उसको लिखना, राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उससे उचित सबक लेना, यह आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इतिहास लेखन का यह अर्थ नहीं कि अपने मन के भावानुसार हम पंक्तियों को काटें अथवा जोड़ें। Historiography का प्रमुख नियम है Facts are sacred, interpretations our own. तथ्य, तथ्य हैं। तथ्यों को तोड़ो मरोड़ो मत। तथ्यों को सही रूप में प्रस्तुत करो। उनके निष्कर्ष अलग-अलग हो सकते हैं। राय अलग-अलग हो सकती है। मगर दुर्भाग्य से अंग्रेजों ने इन तथ्यों को अपने ढंग से प्रस्तुत किया। मुसलमानों ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया। इन सब लोगों ने सच्चाई के साथ अनर्थ किया। सत्य को झुठलाने की कोशिश की। इसलिए अपने इतिहास के साथ सही दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। यह दुर्भाग्य है कि आज हमारे देश में कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें मैं मन्द बुद्धि कहूं या कुछ और, जो इतिहास के ठीक ढंग से पुनर्लेखन को इतिहास का हिन्दूकरण कह कर उसकी निन्दा करते हैं। मैं कहता हूं यदि इतिहास का हिन्दूकरण नहीं होगा तो क्या इस्लामीकरण होगा, ईसाईकरण होगा। प्रश्न हिन्दूकरण का नहीं, झूठ के निराकरण का है।

गत १५० वर्षो में भारत के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ शोध कार्य हुआ है तथा भारत के

इतिहास के सम्बन्ध में बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं। इस दिशा में पहल ब्रिटिश शासकों जिनमें से कुछ विद्वान भी थे, ने की। परन्तु उनका लक्ष्य जैसे मैंने पहले कहा, सत्य की खोज न होकर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें मजबूत करने के लिए ऐसे तथ्य और तर्क जुटाना था जिनसे यह सिद्ध हो कि हिन्दुस्तान के लोगों पर हमेशा विदेशी ही राज करते रहे हैं और उनमें अपने देश पर शासन चलाने की क्षमता नहीं है। इसी संदर्भ में उन्होंने वैदिक आर्यों के मध्य एशिया से भारत में आक्रांता के रूप में आने की बात कही। जब से यह इस निराधार विचार और धारणा का देश में योजनबद्ध ढंग से प्रचार शुरू हुआ तब से भारतीय अथवा हिन्दुओं में हीन भावना और मानसिक दासता का भाव बढ़ने लगा। स्वतन्त्रता के बाद भी आर्यों के भारत के बाहर से आने की निराधार धारणा देश में प्रचारित हो रही है और विद्यार्थियों को पढ़ाई जा रही है।

विंसैंट स्मिथ, एलफ्रैड लायल इत्यादि अंग्रेजों द्वारा लिखे गए भारत के इतिहास में, भारत में समय-समय पर कायम हुए देशी और विदेशी साम्राज्यों पर तो प्रकाश डाला गया है, परन्तु उनके अन्तर्गत आने वाले देश के विभिन्न आंचलों और जनपदों के विषय में वे बहुत कम प्रकाश डालते हैं। अधिकांश भारतीय इतिहासकारों ने इनका अनुकरण किया और उनके द्वारा लिखे गए इतिहास में भी देश के विभिन्न आंचलों और जनपदों के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। परन्तु गत कुछ समय से कुछ स्थानीय विद्वान और लेखक ऐसे आंचलों और जनपदों के इतिहास पर काम करने लगे हैं। कुछ राज्य सरकारों ने भी इसमें रुचि दिखाई है। फलस्वरूप अब देश के क्षेत्रीय आंचलिक और जनपदीय इतिहास के विषय में भी शोध कार्य होने लगा है और क्षेत्रीय इतिहास लिखे जाने लगे हैं। कुछ देशी नरेशों ने भी अपने राज्यों के इतिहास लिखवाये थे और कुछ ब्रिटिश लेखकों ने भी ऐसे राज्यों के इतिहास की ओर विशेष ध्यान दिया था। कर्नल टॉड द्वारा लिखित राजस्थान का इतिहास विशेष रूप में महत्त्वपूर्ण है। टॉड ने परम्परा और जनकथाओं के आधार पर राजस्थान के राजपूत राजाओं और राजस्थान की जनता विशेष रूप में क्षेत्रीय जनता द्वारा देश की स्वतन्त्रता और संस्कृति की रक्षा के लिए किए गए संघर्षों और बलिदानों का विस्तृत, गौरवमय वृत्त पेश किया है।

परन्तु हिमालय पर्वत की घाटियों और तराई क्षेत्र के विषय में कुछ अपवादों को छोड़कर अधिक काम नहीं हुआ। कल्हण और विल्हण द्वारा लिखी गई राजतरंगिणी और कुछ ऐसे अन्य ग्रन्थों के कारण सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक का काश्मीर घाटी का अधिकृत इतिहास उपलब्ध है। नेपाल घाटी और नेपाल राज्य के विषय में भी बहुत कुछ लिखा गया है। परन्तु पंजाब और हरियाणा के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में पड़ने वाले क्षेत्र के इतिहास के बारे में अभी तक कोई विशेष काम नहीं हुआ। इसके दो भाग हैं एक वह जो अब लुप्त हो चुकी सरस्वती और सतलुज नदी और रावी नदी के बीच पड़ता है। इसे प्राचीन भारतीय साहित्य में त्रिगर्त का नाम दिया गया है। दूसरा वह भाग जो रावी और चिनाव के बीच और कुछ हद तक चिनाव और झेलम नदियों के बीच पड़ता है, इसे द्विगर्त जिसमें से डुग्गर शब्द निकला है, कहा जाता है। डुग्गर क्षेत्र के जम्मू राज्य ने कालान्तर में

अपना विशेष स्थान बना लिया और महाराजा गुलाब सिंह के नेतृत्व में न केवल सारा डुग्गर क्षेत्र इस राज्य का अंग बन गया अपितु डोगरा वीरों ने अपने बाहुबल से हिमालय के उत्तर में पड़ने वाले लद्दाख, बलतिस्तान और गिलगित क्षेत्रों को तथा झेलम नदी के साथ लगने वाले पोठोहार क्षेत्र को भी अपने राज्य में मिलाकर एक विशाल राज्य की नींव रखी। १८४६ में काश्मीर घाटी को भी गुलाब सिंह ने अपने राज्य के साथ मिला लिया। क्योंकि महाराजा गुलाब सिंह स्वयं डोगरा थे, इसलिए उनके और उनके उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में डुग्गर क्षेत्र में पड़ने वाले राज्यों और आंचलों के सम्बन्ध में कुछ लिखा गया परन्तु त्रिगर्त क्षेत्र जो रावी नदी के पूर्व में पड़ता है और जो गुलाब सिंह के राज्य में शामिल नहीं था, के इतिहास के सम्बन्ध में अभी तक कोई विशेष काम नहीं हुआ। फलस्वरूप देश के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र जिसमें कांगड़ा, कुल्लू, बिलासपुर, मण्डी, चम्बा इत्यादि अनेक क्षेत्र पड़ते हैं, के विषय में बहुत कुछ शोध करने और उनके इतिहास पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। यह प्रसन्नता का विषय है कि संघ के साथ जुड़े हुए महान विद्वान् श्री बाबा साहेब आप्टे की स्मृति में बनाई गई भारतीय इतिहास संकलन समिति ने इस क्षेत्र की ओर ध्यान दिया है और यहां विद्वानों को इस गोष्ठी में इकट्ठा किया है। मुझे विश्वास है कि इसमें पढ़े जाने वाले शोध पत्रों और इसमें एकत्रित विद्वानों के सहयोग और सहकार्य से इस क्षेत्र और इसमें पड़ने वाले विभिन्न राज्यों के इतिहास के सम्बन्ध में शोध कार्य आगे बढ़ेगा।

त्रिगर्त के सम्बन्ध में प्राचीन संस्कृत साहित्य विशेष रूप से महाभारत और पुराणों में कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है। इस क्षेत्र के एक राजा ने महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से भाग लिया था। समुद्र में डूबे द्वारिका नगर से प्राप्त जानकारी और महाभारत में दी गई जानकारी के आधार पर अब महाभारत के समय की आज से पांच हजार साल पूर्व होने की बात तय हो चुकी है। कुछ पुराणों में इस क्षेत्र के राजाओं की महाभारत युद्ध के पहले की वंशावलियों का उल्लेख मिलता है। इसलिए निश्चित रूप में त्रिगर्त का इतिहास पांच हजार वर्ष से अधिक पुराना है परन्तु उसके विषय में जानकारी का मुख्य स्रोत पुराण ही है। न्याय मूर्ति पार्जिटर के प्रयासों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि पुराणों में दी गई जानकारी निराधार नहीं है। संसार के सभी प्राचीन देशों के इतिहास की शुरूआत परम्परागत कथाओं और उनमें दी गई जानकारी से ही होती है। इसलिए परम्परा को कपोल कल्पित कह कर रद्द करना गलत है। उस जानकारी को परखना और आंकने का काम होना चाहिए। पार्जिटर ने इस दिशा में पहल की थी। उनके काम को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है और इस क्षेत्र की परम्परा के आधार पर ही इसका प्राचीन इतिहास लिखा जा सकता है।

विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं के दरबारी लेखकों के द्वारा लिखे गए इतिहास में इस क्षेत्र का विशेष रूप में कांगड़ा राज्य का कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है। सन् १३६३ में फिरोज तुगलक ने कांगड़ा पर आक्रमण किया, अनेक मन्दिर तोड़े और कई हजार प्राचीन ग्रन्थ नष्ट कर दिए या उन्हें दिल्ली ले गया। वे प्राचीन ग्रन्थ यदि आज उपलब्ध होते तो इस क्षेत्र के इतिहास लिखने में बहुत सहायक सिद्ध

हो सकते थे।

सोलहवीं शताब्दी में अकबर ने इस क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिलाया था और वह कांगड़ा में आया भी था। परन्तु उस काल में फारसी भाषा में लिखे गए अकबर के राज्य के इतिहास पर लिखे ग्रन्थों में कांगड़ा और इस क्षेत्र पर विशेष कुछ नहीं लिखा गया।

महाराजा रणजीत सिंह द्वारा कांगड़ा पर अधिकार करने और उसके बाद इस पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने के समय से कांगड़ा की चित्रकला पर देश और संसार का ध्यान गया और उस विद्या पर इस क्षेत्र की उपलब्धियों के विषय में बहुत कुछ लिखा गया। परन्तु इसके अतिरिक्त यहां के इतिहास की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ब्रिटिश सरकार की यह नीति थी कि जिस क्षेत्र से उनकी फौज के लिए अधिक सिपाही भर्ती किए जाते थे उन्हें अनपढ़ और गरीब रखा जाए ताकि उन्हें वहां से भर्ती निर्वाध रूप से मिलती रहे। इसलिए ब्रिटिश काल में यह क्षेत्र बहुत कुछ उपेक्षित और अविकसित रहा।

१९४७ में देश और पंजाब के विभाजन के फलस्वरूप यह क्षेत्र पूर्वी पंजाब का अंग बना। पूर्वी पंजाब की लोकतान्त्रिक सरकारों ने भी इस क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि पंजाब की विधानसभा में इसके प्रतिनिधि बहुत थोड़े थे। १९६६ में हुए पंजाब के पुर्नगठन और इस क्षेत्र के हिमाचल प्रदेश में मिलाए जाने के बाद इसके विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि कांगड़ा क्षेत्र को हिमाचल प्रदेश में मिलाने में मेरी भी कुछ भूमिका थी। मुझे इसके पिछड़ेपन का प्रत्यक्ष अनुभव था और मेरा यह निश्चित मत था कि पंजाब में रहते हुए इसके विकास की ओर उचित और आवश्यक ध्यान नहीं दिया जाएगा। अब स्थिति बदली हुई है और यह क्षेत्र और इसके लोग हिमाचल प्रदेश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अब इसके विकास की गति भी तेज हुई है। मुझे आशा और विश्वास है कि भारतीय इतिहास संकलन समिति द्वारा इसके इतिहास के सम्बन्ध में किए जाने वाले प्रयासों को हिमाचल सरकार का पूरा योगदान मिलेगा।

हम सब एक पथ के पथिक

ठाकुर राम सिंह

कार्तिक कृष्ण षष्ठी से अष्टमी, कलियुगाब्द ५०६८ (१ से ३ नवम्बर, १९९६) को मध्य प्रदेश, भोपाल में अखिल इतिहास संकलन योजना के चतुर्थ राष्ट्रीय अधिवेशन के अवसर पर योजना के तात्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष ठाकुर राम सिंह जी का प्रेरणास्पद स्मरणीय सम्बोधन यहां अविकल रूप में दिया जा रहा है।

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के निर्माता और मार्गदर्शक मान्यवर श्री मोरोपन्त नीलकंठ पिंगले जी, योजना के अन्य अधिकारीगण एवं चतुर्थ राष्ट्रीय अधिवेशन के निमित्त देश के विभिन्न स्थानों से पधारे सम्माननीय प्रतिनिध गण : महाराजा भोज की एक ऐतिहासिक नगरी में , मैं आप सब विद्वानों का स्वागत करता हूं और यथायोग्य अभिवादन भी करता हूं। हम सब एक ही पथ के पथिक हैं और हम सबका संकल्प तथा लक्ष्य भी एक ही है कि अपनी मातृभूमि, पुण्यभूमि भारत की प्राचीनता और गौरवमय अतीत को प्रकाश में लाकर विदेशियों तथा उनके संकेत पर कुछ भारतीय इतिहासकारों द्वारा विकृत किए गए भारत के इतिहास को भारतीय स्रोतों, नवीन पुरातात्विक खोजों और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखीं गई शोध सामग्री को संकलित करके भारत का अपना इतिहास लिखना। ऐसा इतिहास लिखना जो केवल पराजय की ही कहानियां न कहे अपितु ऐसा इतिहास जो हम सबके लिए प्रेरणा स्रोत बने, जिसे पढ़कर हम गौरव से अपना सर ऊंचा करके कह सकें कि भारत विश्व का गुरु रहा है और विश्व का गुरु बनने की अब भी उसमें संभावनाएं हैं, महर्षि अरविन्द का यही सपना था और स्वामी विवेकानन्द के स्वर में यही गुंजन थी। इस अवसर पर हमें सहसा उस महापुरुष का स्मरण हो आता है जिसने अपने जीवन के लगभग ४२ वर्ष राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचार कार्य करते हुए उत्तुंग हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा कच्छ के रण से कामरूप तक के प्रवासकाल में देश के मूर्धन्य इतिहासकारों से संपर्क करके चिन्तन किया जिसके फलस्वरूप हम सब आज यहां उपस्थित हैं। वह महापुरुष थे **श्री उमाकान्त केशव आपटे** जिन्हें हम **बाबा साहब आपटे** के नाम से अधिक जानते हैं। उसके चिन्तन का निष्कर्ष है कि यदि हमें अपनी भारत मां को परमवैभव पर पहुंचाना है तो संघ कार्य के साथ ही दो कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और वे हैं **भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन** तथा **जनभाषा के रूप में संस्कृत की पुर्नःस्थापना** उनकी ये दो संकल्पनाएं उनके जीवनकाल में मूर्तरूप नहीं ले सकी। २७ जुलाई सन् १९७२ को वे ब्रह्मलीन हो गए। तत्पश्चात युगाब्द ५०७५ ईस्वी सन् १९७३ में **बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति** की स्थापना हुई तथा इस समिति के एक प्रकल्प के रूप में **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना** का गठन किया गया।

योजना के विस्तृत वर्णन में मैं जाना नहीं चाहूंगा। वैसे भी आप सब लोग इससे परिचित है, फिर भी कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी होंगे जो कदाचित योजना से पहली बार जुड़े है, उनके लिए मैं संक्षेप में कुछ कहना चाहूंगा।

भारतीय इतिहास पुनर्लेखन का कार्य कितना दुष्कर, कठिन और महत्त्वपूर्ण है इसकी कल्पना केवल वे ही कर सकते हैं जो इस महान कार्य से जुड़े हुए हैं। हमारा इतिहास लगभग दो अरब वर्षों का इतिहास है। वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत, प्राचीन वांगमय, नवीन पुरातात्विक खोजों, अभिलेखों, संकल्पों और प्राचीन प्रलेखों में यह विशाल कालखण्ड बिखरा पड़ा है। यदि किसी के ग्रन्थ सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व मानते हों तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं। हमारे साक्ष्य तो दो अरब वर्षों के इतिहास को समेटे हुए हैं। वर्तमान परिस्थिति में और उपलब्ध साधनों में इतने विशाल कालखण्ड का इतिहास लिखना संभव नहीं है, इसलिए यह विचार किया गया कि महाभारत के ३६ वर्ष बाद से, जब भारतीय कालगणना के अनुसार कलियुग का प्रारम्भ होता है, भारत के इतिहास का पुनर्लेखन किया जाए। इस इतिहास को भारतीय कालगणना के आधार पर लिखा जाएगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि काल पर आधारित भारतीय कालगणना पूर्णतः वैज्ञानिक है।

विद्वानों का मत है कि **ज्ञात से अज्ञात की ओर जाना चाहिए।** इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर योजना प्रत्येक जिले का १९३९ से १९५० तक के इतिहास को लिखवाने का प्रयास कर रही है। भारतीय कालगणना के अनुसार यह अवधि कलियुग के ८५वें चक्र के अन्तर्गत युगाब्द ५०४१ से ५०५१ होगा।

भारतीय इतिहास पुनर्लेखन की कठिनाई केवल विशाल कालखंड और देशभर में बिखरी सामग्री ही नहीं है अपितु हमें बड़ी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। भारतीय इतिहास का जो विकृतीकरण हो चुका है तथा विकृतीकरण का जो प्रयास चल रहा है, वह यथावत बना रहे इसके लिए विश्व के कई शक्तिशाली और आर्थिक रूप से अत्यन्त सम्पन्न राष्ट्र यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। स्वयं भारत में भी उनके निर्देशों पर चलने वाले स्वार्थी तत्वों की कमी नहीं है। ऐसे तत्वों के साधन सम्पन्न संगठन भी हैं। महत्त्वपूर्ण और दिशा निर्देशन करने वाले पदों पर भी वे आसीन हैं। वे सब इस प्रयत्न में हैं कि पिछले लगभग १२५ वर्षों से जिन भ्रमात्मक तथ्यों को उन्होंने स्थापित किया है वे स्वतन्त्र भारत के पाठ्यक्रमों में बने रहकर भारतीय जनमानस को मानसिक दासता और हीनभावना से ग्रसित बनाए रखें।

एक ओर आज की ये बड़ी शक्तियां और विपुल साधन और दूसरी ओर हम लोग जो यहां एकत्रित हुए हैं। लेकिन **हमारे पास वह है जो उनके पास नहीं है, और वह है हमारी राष्ट्रभक्ति, भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा और षड्यन्त्रों को तोड़कर अपने सत्य मार्ग को निकालने का दृढ़ संकल्प।** इसी के सहारे हम एक सफलता से दूसरी सफलता पर पहुंचते जा रहे हैं। सबसे बड़ा भ्रम जो स्थापित किया गया था

कि **आर्य भारत में विदेशी आक्रांताओं के रूप में आए।** हम सबके प्रयत्नों से अब सिद्ध हो चुका है कि यह नितान्त असत्य और अनैतिहासिक है। अभी हाल ही में दिल्ली में संपन्न एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में यह स्वीकार करना पड़ा कि **आर्य भारत के ही मूल निवासी थे और यहीं से वे विश्व में फैले।** आर्य कोई जाति नहीं अपितु एक आदर सूचक संबोधन था। खैर, यह विषय तो सत्रों में चर्चा का है, मैं तो केवल इसी ओर ध्यान दिला रहा हूं कि जो विचारधारा हमने प्रारम्भ की वह विश्व में चल पड़ी। हमारी विचारधारा के विरोधी इतिहासकारों की इतिहास की पुस्तकों के नए संस्मरणों में वे स्वयं इस समस्या पर या तो प्रश्नचिन्ह लगाने लगे है या फिर इसे स्वीकार करने लगे हैं। यह हमारी एक उपलब्धि है।

योजना ने **वैदिक नदी सरस्वती शोध अभियान** का एक प्रकल्प प्रारम्भ किया है। इस पर विस्तृत चर्चा तो किसी सत्र में होगी, पर यहां मैं आपके ध्यान में यह तथ्य ला दूं कि अब तक के उपलब्ध पुरातात्विक, भूगर्भीय जल विज्ञान तथा सैटेलाइट आदि के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि सरस्वती नदी अभी भी अन्तःसलिला के रूप में, हिमाचल, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात में प्रवाहित हैं और इसके अथाह जल को निकालना संभव है। इसी के साथ यह भी प्रमाणित हो चुका है कि कम से कम चालीस हजार वर्ष पूर्व सरस्वती नदी एक विशाल नदी के रूप में जो लगभग आठ कि.मी. चौड़ी थी, यहां प्रवाहित होती थी और उसके तटों पर पूर्ण विकसित सभ्यता थी, बड़े नगर थे, आश्रम थे, शिक्षा के केन्द्र थे। हमारे कट्टर से कट्टर विरोधी भी अब ''इण्डो-सरस्वती सिविलाईजेशन'' कहने पर विवश हो गए है तथा **प्रसिद्ध वामपंथी विद्वान लेखक डॉ. रामविलास शर्मा ने तो सरस्वती नदी की प्राचीनता तथा ऋग्वेद के ऊपर अरोपित पाश्चात्य विद्वानों के भ्रमों का जबरदस्त खंडन करके भारतीय दृष्टिकोण की पुष्टि की है।** उनका शोध ग्रन्थ **ऋग्वेद तथा पश्चिम एशिया** सम्मेलन के बिक्री पटल पर उपलब्ध है। भारतीय इतिहास संकलन योजना की विभिन्न समितियों द्वारा नव योजना के अन्तर्गत लगभग ८० पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है, जिनमें से अधिकांश आपको विक्री पटल पर मिल सकेंगी।

इसी के साथ योजना अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका ''इतिहास दर्पण'' का प्रकाशन भी करती है। अभी इसके ४ अंक प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें एक अंक संयुक्त अंक है। इतने अल्प समय में ही इस पत्रिका ने अपना अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व बना लिया है। बिक्री पटल पर यह भी उपलब्ध है। इस पत्रिका के लिए मैं आपसे अनुरोध करना चाहूंगा कि आप अपने शोधपूर्ण लेख तो भेजे ही, पर इसी के साथ इसके ग्राहक भी बनिए और बनाइए।

मैंने अपनी बात बहुत संक्षेप में रखने का प्रयत्न किया है, फिर भी मैं समझता हूं कि आप योजना की विशालता और महत्त्व को समझ सके होंगे। इतिहास के पुनर्लेखन के लिए सुदृढ़ संगठन की आवश्यकता है। आखिर इतिहास पुनर्लेखन की सामग्री संकलन करने के लिए परिश्रमी, स्वार्थहीन, निष्ठावान, कार्यकर्ता चाहिए, राष्ट्रीय दृष्टिकोण के लेखक चाहिए। इतिहास के साथ लगभग १३ विषय जुड़े होते हैं हमने इसके निमित्त एक दिशा-निर्देश भी प्रकाशित किया है। सभी विषयों के

लेखकों की हमें आवश्यकता होगी। सामग्री संकलन कर लेने पर, लेखकों के द्वारा शोधात्मक लेख/ग्रन्थ लिख दिए जाने पर उन पर समीक्षा करने, विचार करने और संपादन करने के लिए विद्वानों की आवश्यकता होगी। इन्हें हमारे कार्यकर्ता ही तो एकत्रित करेंगे। इसके लिए हमें एक सुदृढ़ संगठन खड़ा करना होगा। यह संगठनात्मक संरचना ही हमारे कार्य की आधारभूमि है। इसके लिए प्रत्येक प्रदेश और जिलों में इतिहास संकलन समितियों का गठन करना आवश्यक है।

संगठनात्मक दृष्टि से हमने देश भर में ४५ प्रान्त माने हैं। इनमें से ३५ प्रान्तों में समितियों का गठन हो चुका है और व कार्ययुक्त है।

इतिहास लेखन का और विश्वविद्यालयों का घनिष्ठ संबन्ध है। हमने ९४ विश्वविद्यालयों को स्वीकार किया है। इन ९४ विश्वविद्यालयों में से ६६ विश्वविद्यालयों में समितियों का गठन हो चुका है और वे कार्ययुक्त हैं। १८ विश्वविद्यालय ऐसे हैं, जहां संयोजक निश्चित हो चुके हैं। आशा है ये विश्वविद्यालय भी शीघ्र कार्ययुक्त हो जाएंगे।

हमने कुल जिले ६९४ स्वीकार किए हैं इनमें से अभी तक केवल १८१ जिले ही कार्ययुक्त हैं तथा २४ जिलों में संयोजक नियुक्त किए जा चुके हैं। वैसे जिले तक योजना की इकाई बनाने का निर्णय अभी हाल में ही लिया गया है, पर यह महत्वपूर्ण है।

सभी प्रान्तों, विश्वविद्यालयों, जिलों में एक निश्चित समय तक समितियों के गठन का कार्य पूरा करना होगा, तभी कार्य में गति आएगी।

अपने कार्य के विस्तार के लिए आवश्यक है कि इतिहासमय वातावरण बनाया जाए। इस वातावरण को बनाने में, पाक्षिक अथवा साप्ताहिक गोष्ठयों और संगोष्ठियों का महत्त्वपूर्ण योगदान होगा। सभी समितियां इस ओर कार्य भी करेंगी। इसके लिए केन्द्र की ओर से कुछ विषय भी दिशा निर्देश के रूप में सुझाए जाते हैं। फिर भी हमने एक वर्ष इतिहास दिवसों के लिए निर्धारित किया है। इसके लिए भी केन्द्र के द्वारा विषय सुझाया जाता है। अभी तक योजना की समितियों द्वारा २५० इतिहास दिवस मनाए जा चुके हैं तथा लगभग १०० मासिक गोष्ठियों और संगोष्ठियों का आयोजन हो चुका है।

इन सब कार्यों के लिए धन की आवश्यकता है। इसके लिए संरक्षक परिषद् का गठन किया गया है। योजना के उद्देश्यों से सहमत, राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाला कोई भी व्यक्ति पांच हजार अथवा इससे अधिक की राशि देकर संरक्षक परिषद् का सदस्य बन सकता है। भारत सरकार ने संरक्षक परिषद् को दी जाने वाली राशि पर कर की छूट की स्वीकृति दी है। हमें आशा है कि अधिवेशन से वापस जाने पर आप अधिक से अधिक संरक्षक बनाएंगे।

प्रान्तीय समितियां अपनी सुविधानुसार शुल्क निश्चित कर आजीवन सदस्य और साधारण सदस्य बना सकती है। दिल्ली में आजीवन सदस्यता का शुल्क एक हजार एक सौ रुपये है, तथा साधारण सदस्य का तीन वर्ष के लिए एक सौ पचास रुपये है।

वैसे तो ये सब सूचनाएं आपको प्रान्तीय अधिकारियों ने दे दी होंगी, फिर भी मैंन आपका ध्यान इस ओर इसलिए दिलाया है, क्योंकि यह भी अत्यन्त आवश्यक है।

आपका और अधिक समय न लेते हुए, इस अनुरोध के साथ कि आप सब सत्रों में सम्मिलित होते समय चर्चा और प्रश्नों में भाग लें पर समय का ध्यान रखें और **सत्यम् ब्रूयात्। अप्रियम् सत्यं न ब्रूयात्** को भी दृष्टि से ओझिल न होने दें तथा आपको यह विश्वास दिलाते हुए कि भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन यही, सत्य संकलित तथ्यों पर आधारित, पूर्वाग्रहों से रहित, अपनी कालगणना से तिथिक्रम के अनुसार ही होगा, अपना सम्बोधन समाप्त करता हूं।

सब बातों में महान

प्रो. बलराज मधोक

ठाकुर जी मेरे बड़े भाई थे। बेशक मैंने उन्हें संघ की शाखा में जोड़ा था, परन्तु वे सब बातों में महान थे। कॉलेज में पढ़े। मुझे हाकी में रुचि थी, ठाकुर साहब को भी हाकी में रुचि थी। ठाकुर साहब इतिहास में रुचि रखते थे, मैं इतिहास में रुचि रखता था। मैं स्वयंसेवक बना, ठाकुर साहब भी स्वयंसेवक बने। यह मित्रता इतनी प्रगाढ़ होती गई कि यह अन्त तक पक्की रही। एक बार राम सिंह जी हमारे घर पर आए। हमने उन्हें मूली खाने को दी। उस मूली को वह कई बार याद दिलाते थे। बलराज तूने मूली खिलाकर मुझे स्वयंसेवक बना दिया। वे शाखा का काम बड़ी तन्मयता से करते थे। उस समय कॉलेज के अन्दर विद्यार्थियों में यह चर्चा चलती थी कि जब देश आजाद हो जाएगा, तो देश में किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी। ठाकुर साहब इस प्रकार की व्यावहारिक बहसों में हिस्सा लिया करते थे। देश की आजादी के लिए जिस प्रकार का कार्य ठाकुर जी जैसे महान् व्यक्तित्व ने किया, वह सदा प्रेरणा देता है। उन्होंने सब प्रकार की इच्छाओं से दूर रहकर राष्ट्र कार्यों के लिए अपने जीवन का सर्वस्व समर्पित कर दिया था।

ठाकुर रामसिंह स्मृति श्रद्धांजलि विशेषांक 'इतिहास दिवाकर', आश्विन/पौष कलियुगाब्द ५११२, अक्तूबर २०१०/जनवरी २०११, पृष्ठ ६८

ठाकुर जी और मधोक जी में आत्मीयता

विश्वनाथ शेखड़ी

ठाकुर राम सिंह जी का नाम मैंने पहली बार १९४२ में अपने परममित्र श्री ब्रह्मदेव बैहल के मुख से सुना था। बैहल जी लाहौर माडल टाउन शाखा के मुख्य शिक्षक थे और ठाकुर जी उस शाखा के स्वयंसेवक बने। बैहल जी एक बहुत निपुण और प्रभावशाली स्वयंसेवक थे। वह स्यालकोट में मेरे साथ स्कूल में और कॉलेज में पढ़े थे। उन्होंने १९४० में एक शाम मुझे अपने फ्लैट में ले जाकर दो घण्टे में इतना प्रभावित कर दिया कि अगले दिन ही उनके साथ मैं संघ की शाखा में चला गया और बाद में मैं एक पूर्ण निष्ठावान स्वयंसेवक बना और १९४१ में उन्हीं के साथ मैं नागपुर में प्रथम वर्ष प्रशिक्षण के लिए ओटीसी में चला गया।

बैहल जी ठाकुर जी का नाम बहुत गर्व से लिया करते थे और कहा करते थे कि यह उनके स्वयंसेवक हैं और उन्हीं की प्रेरणा से वह अपने पहले वर्ष में शिक्षा के लिए खण्डवा गए और फिर प्रचारक भी बन गए। उस समय तक मैं ठाकुर जी को मिला तो नहीं था, परन्तु उनके बारे में लगातार सुनता रहा कि उन्होंने आसाम और उत्तरपूर्व के प्रदेशों में बहुत अच्छा काम किया है। मेरी उनसे मुलाकात पाकिस्तान बनने के पश्चात् झण्डेवाला संघ कार्यालय के दफ्तर में चमन लाल जी ने करवाई। चमन लाल जी जो कि स्यालकोट के ही थे और मेरे साथ १९४१ के नागपुर वर्ग में गए थे, मैं अक्सर उनसे मिलने उनके कमरे झण्डेवालान में जाया करता था। मैंने ठाकुर जी को याद दिलाया कि उनके नाम की पहचान मुझे ब्रह्मदेव जी ने करवाई थी तो उनसे हमारी आपस में ब्रह्मदेव जी को लेकर उनके परिवार के लोगों के बारे में लम्बी बातचीत हुई।

जब उनको अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना का काम दिया गया तो उन्होंने मुझे उसकी एक कमेटी का सदस्य बना लिया। जब अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के कार्यालय को दिल्ली में बनाने की बात आई तो यह मेरे निवास स्थान पर विधिपूर्वक हवन यज्ञ करके किया गया। भोजन के समय जब वह मेरी धर्मपत्नी को मिले और उन्हें पता चला कि वह श्री बलराज मधोक की छोटी बहन है तो वह मेरे अधिक निकट आ गए। उसके पश्चात् वह मुझे अपना छोटा भाई ही समझने लगे। चमन लाल जी के होते हुए यह दोनों महीने में एक बार मेरे बुलाने पर मेरे घर खाने के लिए आया करते थे। जिससे हमारी निकटता और दृढ़ होती गई। चमन लाल जी के स्वर्गवास के बाद वह अकेले ही आया करते थे।

ठाकुर जी और मधोक जी दोनों इतिहास की एम.ए. क्लास में पढ़े थे। एक ही साल में दोनों ने एम.ए. की परीक्षा दी और उसमें पहला और दूसरा स्थान पाया। ठाकुर जी एफ.सी. कॉलेज लाहौर

में पढ़ते थे और मधोक जी डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में। मधोक जी की प्रेरणा से ही ठाकुर जी संघ के स्वयंसेवक बने। जब दोनों ही संघ के प्रचारक के रूप में १९४२ में निकले तो उनकी आपस में आत्मीयता और बढ़ गई जो कि ठाकुर जी ने अपने जीवन के अन्त तक निभाई। कुल्लू से उनका फोन आया और उन्होंने मुझे कहा कि मेरी अस्वस्थता के बारे में बलराज जी को बता दो। बलराज जी के बीजेपी और आर. एस. एस. से विमुख होने पर भी ठाकुर जी ने अपना सम्बन्ध उनसे बहुत अच्छा बनाए रखा। एक बार उन्होंने अपनी संस्था की ओर से दिल्ली में बलराज जी को सम्मान देने के लिए सभा बुलाई, उनको मानपत्र दिया और उनके गुणों की बहुत प्रशंसा की। यह बात उनके हृदय की स्वच्छता उदात्त आत्मीय भावना को प्रमाणित करती है। उनका हमारे साथ प्यार व आत्मीय सम्बन्ध हमें अपने जीवन के अन्त तक याद रहेगा। हम कभी भूलेंगे नहीं।

१९/७७, पंजाबी बाग (पूर्व)
नई दिल्ली - ४२

भारतीय इतिहास की परम्परा

पाश्चात्य इतिहास की परम्परा में प्रकृति का इतिहास मान्य नहीं है। परन्तु प्रकृति का इतिहास वैज्ञानिक विषय है और भारतीय परम्परा में प्रकृति और मानव सृष्टि इन दोनों का इतिहास लेखन अनिवार्य है। यही भारतीय इतिहास शास्त्र की अन्य पूर्व उल्लिखित विशेषताओं में प्रमुख विशेषता है। भारतीय ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार इतिहास के आरम्भ का प्रथम बिन्दु हिरण्यगर्भ है और दूसरा उच्चतम बिन्दु 'नर' है जहां पहुंच कर प्रकृति का अवांतर विकास बंद हो जाता है। मानवसृष्टि काल की स्थापना के लाखों वर्षों के बाद तक होती है जब 'नर' की उत्पत्ति के साधनभूत सारे आयाम पूर्ण हो जाते हैं। अतः भारतीय इतिहास शास्त्र की मान्यतानुसार प्रकृति और मानव सृष्टि इन दोनों का इतिहास लेखन अपेक्षित है। काल की अवधारणा न होने के कारण पाश्चात्य जगत् की इतिहास - परम्परा में प्रकृति का इतिहास स्वीकार नहीं है। इतिहास की वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों बिन्दुओं से संबन्धित इतिहास का लेखन भारतीय परम्परा में आवश्यक है।

ठाकुर रामसिंह

हिन्दू, हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व

प्रो. बलराज मधोक

भारत अथवा हिन्दुस्तान अथवा इण्डिया के लोग अति प्राचीन काल से हिन्दू नाम से जाने जाते रहे हैं। यह नाम सिन्धु से निकला है। सिन्धु नदी इस देश का प्रमुख भौगोलिक मानचिह्न है। पश्चिम की ओर से भारत में प्रवेश करने पर प्रवहमान सागर जैसी यह विशाल नदी हमारे देश की विशिष्ट पहचान रही है। इस महान् नदी और उसकी सरस्वती नदी समेत सहायक नदियों के तटों पर ही उस महान् आर्य संस्कृति और जीवन-पद्धति का विकास हुआ जो बाद में सिन्धु से ब्रह्मपुत्र और हिमालय से कन्याकुमारी तक फैले सारे देश में व्याप्त हो गई। यही क्षेत्र वैदिक आर्यों का आदि देश और मूल निवास था। यहीं से उनका पूर्व और पश्चिम के देशों में विस्तार हुआ। **डॉ. सम्पूर्णानन्द** ने अपनी विख्यात कृति **आर्यों का आदि देश** में इस तथ्य को अकाट्य प्रमाणों के साथ प्रतिपादित किया है।

आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ और भारतीय संस्कृति और ज्ञान के आदि स्रोत **ऋग्वेद** में इस क्षेत्र को **सप्तसिन्धवः** (सात नदियों का क्षेत्र) और 'ब्रह्मावर्त (जहां से परमात्मा ने सृष्टि आवर्तन किया) कहा गया है। भ्रातृदेश ईरान के लोगों के संस्कृत 'स' का उच्चारण 'ह' किया। इसलिए उन्होंने सप्तसिन्धवः को **हप्तहिन्दवः** कहा। ईरानियों (पारसियों) की प्राचीन धर्मपुस्तक **जिन्द अवेस्ता** में 'हप्तहिन्दवः' शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार संसार में ईसाई मत और इस्लाम के प्रादुर्भाव से बहुत पहले सिन्धु नदी के इस देश को सिन्धुस्तान अथवा हिन्दुस्तान की संज्ञा मिल चुकी थी। इसके लोगों को हिन्दू नाम से पहचाना जाने लगा था।

बहुत समय बाद जब सिकन्दर के नेतृत्व में यूनानी सेनाएं ईरान को हस्तगत करके हमारे देश की ओर बढ़ी तो वे भी सिन्धु नदी के दृश्य से प्रभावित हुई। उन्होंने सिन्धु का उच्चारण **इण्डस** किया, सिन्धु नदी वाले इस देश को इण्डिया की संज्ञा दी और यहां के लोगों को इण्डियन कहना शुरू किया। इस प्रकार यूनानियों द्वारा पहले-पहल हिन्दुस्तान ओर इसके निवासियों के लिए इण्डिया और इण्डियन नामों का प्रचलन किया गया क्योंकि ब्रिटेन समेत यूरोप के लोगों को हमारे देश का ज्ञान पहले-पहल यूनानियों से मिला इसलिए उनमें यही नाम प्रचलित हुआ। हिन्दूस्तान के लोग अपने और अपने देश के लिए यूरोप में प्रयुक्त किए जाने वाले इन नामों से सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीय लोगों के हिन्दुस्तान में आने तक सर्वथा अनभिज्ञ थे। अपने देश में इन नामों का व्यापक प्रचलन हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज

की स्थापना के बाद ही हुआ। इस प्रकार इन नामों की अंग्रेजी भाषा और सभ्यता की तरह विदेशी ब्रिटिश राज की निशानी कहा जा सकता है।

ऊपर दिए गए विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान और इण्डिया तथा हिन्दू और इण्डियन पर्यायवाची शब्द हैं।

हमारे देश का तीसरा नाम भारत अथवा भारतवर्ष है। इस नाम की पृष्ठभूमि राजनीतिक है। जब वैदिक आर्य और उनकी संस्कति सप्तसिन्धवः अथवा ब्रह्मवर्त क्षेत्र से आगे बढ़क हिमालय और विन्ध्याचल के बीच के सारे भू-भाग में फैल गई, तब इस सारे क्षेत्र को आर्यावर्त कहा जाने लगा। कालान्तर में वैदिक आर्य संस्कृति विन्ध्याचल पार करके देश के दक्षिणी भाग में भी फैल गई। इस प्रकार हिमालय से कन्याकुमारी तक का सारा भू-भाग सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्र में बन्ध गया। तब विन्ध्याचल के उत्तर के क्षेत्र को उत्तरापथ और इसके दक्षिण के क्षेत्र को दक्षिणापथ कहा जाने लगा।

राजनीतिक दृष्टि से सुनिश्चित सीमाओं और समान संस्कृति वाला यह भू-भाग अनेक राज्यों में बंट गया। परन्तु देश के विचारकों की यह स्वाभाविक आकांक्षा रही कि राजनीतिक दृष्टि से भी यह सारा देश एक सूत्र में बन्ध जाए। इसीलिए उन्होंने चक्रवर्ती राज्य की कल्पना की। हमारी परम्परा के अनुसार प्रथम सम्राट जिसने इस काम में सफलता प्राप्त की और काश्मीर से कन्याकुमारी तथा सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक के सारे क्षेत्र को एक छत्र के नीचे ले आया, वह सम्राट भरत था। उसकी इस उपलब्धि की याद में सारे देश को भारत अथवा भारतवर्ष की संज्ञा भी मिल गई। यह घटना हजारों वर्ष पूर्व की है। विष्णुपुराण, जो लगभग दो हजार वर्ष पुराना है, इस नाम का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं करता अपितु इसके उद्‌गम पर भी प्रकाश डालता है। इसके अनुसार समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का सारा भू-भाग जिसमें भारत की सन्तति निवास करती है, भारतवर्ष देश है –

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तत् भारतं नाम भारती यन्त्र संततिः।।

लगभग उसी समय लिखे गए वायुपुराण में इस भारत देश के विस्तार तथा लम्बाई-चौड़ाई का भी स्पष्ट उल्लेख है। इसके अनुसार गंगा के स्रोत से कन्याकुमारी तक इस देश की लम्बाई एक हजार योजन है –

योजनानां सहस्रं द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्।
आयतो हि कुमारी स्याद् गंगा प्रभवाच्च यः।।

इस प्रकार हिन्दुस्तान और भारत तथा हिन्दू और भारतीय नामों का देश में प्रचलन हुआ। परन्तु उत्तर भारत में हिन्दू शब्द का प्रचलन अधिक रहा। प्राचीन जैन साहित्य में हिन्दू देश अथवा हिन्दुस्तान का उल्लेख अनेक जगह मिलता है। एक जैन गुरु अपने शिष्य को यह कहते बताए गए हैं कि चलो हिन्दू देश चलो -

एहि हिन्दु देशं वच्चामिः।

स्वर्गीय डॉ. राधाकृष्णन् ने १९६५ में गणतन्त्र दिवस के अवसर पर राष्ट्र के नाम प्रसारित

अपने भाषण में हिन्दुस्तान नाम के सम्बन्ध में एक श्लोक कहा था, वह निम्नोक्त है –

हिमालयं समारम्य यावदिन्दु सरोवरम्।।
हिन्दुस्थानमिति ख्यातमाद्यन्ताक्षरयोगतः।।

यह श्लोक कुलार्णव तन्त्र का है। इसके अनुसार हिमालय से इन्दु सरोवर (कन्याकुमारी) नामों के मेल से हिन्दुस्तान नाम बना है।

भविष्यपुराण हिन्दुस्तान को सिन्धु के पश्चिम में स्थित भू-भाग द्वारा विख्यात करता है –

सिन्धु स्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्यचोत्तामम्।
म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतः तेन महात्मनन्।

भारत के बाहर यहां के लोग भारतीय की अपेक्षा हिन्दू नाम से अधिक जाने जाते थे। चीनी यात्रा ह्वेनस्यांग संस्कृत का भी विद्वान था और भारत नाम से भली-भान्ति परिचित था, परन्तु उसने अपनी कृतियों में भारत के लोगों का उल्लेख जिन्तू अथवा हिन्दू नाम से ही किया । आज भी जापान, वियतनाम इत्यादि बौद्ध धर्मप्रधान देशों से भारत के लोगों के लिए हिन्दू अथवा इन्दु नाम का ही प्रयोग होता है। वे लोग हमें न भारतीय कहते हैं न इण्डियन।

ऊपर दिए गए उदाहरणों और प्रमाणों से वह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तान और हिन्दू नाम अति प्राचीन है। इनका प्रचलन ईसाई मत और इस्लाम मत के उद्भव से बहुत पहले हो चुका था। जब मुसलमान आक्रान्ताओं का हिन्दुस्तान के हिन्दू लोगों ने कड़ा प्रतिरोध किया तब उन्होंने सभी हिन्दुओं को अपना शत्रु मान लिया और वे हिन्दू शब्द को काफिर का पर्याय मानने लगे। यही कारण है कि मुसलमानों के द्वारा लिखे गए कई फारसी ओर अरबी शब्दकोशों में हिन्दू का अर्थ 'काफिर' और 'चोर' लिखा गया। इस विवेचन से हिन्दू नाम की प्राचीनता, सार्थकता और इसके सही अर्थ के सम्बन्ध में सब भ्रान्तियां दूर हो जानी चाहिए।

अरब, तुर्क और मुगल आक्रान्ताओं के साथ लम्बे संघर्ष में हिन्दू नाम हमारी सुख और दुःख, जीत और हार, त्याग और बलिदान की स्मृतियों से पवित्र हो गया। चन्द्रवरदाई ने अपनी विख्यात कृति **पृथ्वीराजरासो** में भारतवासियों और पृथ्वीराज चौहान के सैनिकों को तुर्क आक्रान्ताओं से विख्यात करने के लिए बार-बार हिन्दू नाम का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए उनके निम्न वाक्य प्रासंगिक भी हैं और प्रेरणादायक भी –

अरे हिन्दू भीरे, बहे खड्गधारं।
मुखे मार मारं बहे सूर सारं।।

तथा

हिन्दू म्लेच्छ अघाइ घायन।
नाचि नारद युद्ध चायन।।

पृथ्वीराज की नीति का उल्लेख करते हुए चन्द्रवरदायी इसे हिन्दुओं की जीत कहते हैं –

आज भाग चहुआन घरे।
आज भाग हिन्दुवान।।

पराजय और क्षमादान के उपरान्त कृतघ्न मुहम्मद गौरी द्वारा पुनः आक्रमण का उल्लेख पृथ्वीराज के सेनापति चामुण्डराय के इन ओजपूर्ण शब्दों में किया गया है –

निर्लज्ज म्लेच्छ लज्जं नहीं, हम हिन्दू लजवान।

महाकवि भूषण ने भी इस देश के लोगों को हिन्दू (हिन्दुवान) तथा विदेशियों को तुर्क (मुसलमान) कहा है। छत्रपति शिवाजी की उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है –

राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान की तिलक राख्यौ।
अस्मृति पुरान राखे वेदविधि सुनी मैं।।

गुरु तेग बहादुर ने औरंगजेब की चुनौती को स्वीकार करते हुए हिन्दु के नाम पर ही अपनी बलि चढ़ाई थी। **सूर्य प्रकाश** में इस तथ्य का इन शब्दों में बखन किया गया है –

तिन ते सुन श्री तेग बहादुर, धर्म निवाहन विशेष बहादुर।
उत्तम मनियो धर्म हम हिन्दू, असि प्रिय को किन को निकंदू।।

सिन्ध के महाराज दाहर, लाहौर और काबुल के महाराज जयपाल और आनन्दपाल, दिल्ली के अधिपति पृथ्वीराज चौहान, राणा हम्मीर, महाराणा सांगा, महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौर, विजयनगर साम्राज्य के कृष्णदेव राय और रामराय, छत्रपति शिवाजी, वीर हकीकतराय, गुरुगोविन्दसिंह, बन्दा बहादुर, भाई मतिदास, महारानी लक्ष्मीबाई और राजाकुंवरसिंह जैसे वीर बलिदानियों और उनके असंख्य साथियों ने हिन्दू की आन, बान और शान के लिए ही अपना सर्वस्व बलिदान किया था। उन सबका उद्देश्य हिन्दुस्तान को मुस्लिम और अंग्रेज आक्रान्ताओं से मुक्त कर यहां हिन्दू पाद पादशाही अथवा हिन्दू राज्य अथवा हिन्दवी स्वराज्य स्थापित करना था।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दु शब्द का उद्‌गम भौगोलिक है और इसका अर्थ राष्ट्रवाचक है। अनेक शताब्दियों तक इसी नाम से हमारे पूर्वजों ने विदेशियों से लोहा लिया और हिन्दुस्तान को हिन्दू देश के रूप में प्रख्यात किया। इसी कारण हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान के राष्ट्रवाद का परिचायक बन गया। आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ते, सारे हिन्दुस्तान की विदेशी राज्य से मुक्ति और इसमें राम राज्य अथवा हिन्दू राज्य की स्थापना हमारे लम्बे स्वतन्त्रता संघर्ष की प्रेरणा और उद्देश्य रहा। सिन्ध पर अरब आक्रान्ताओं का ७१२ ई. में अधिकार हो गया और लाहौर तक का पश्चिमी पंजाब १०२० ई. में हिन्दुस्तान से कटकर गजनी के इस्लामी (तुर्क) राज्य का अंग बन गया। इस प्रकार आज का पाकिस्तान १०२० ई. में पहली बार बना था। परन्तु हिन्दुओं ने कभी उसे स्थाई नहीं माना। मराठों के घोड़े पूना से चलकर सिन्धु नदी का पानी पीने सिन्धु के तीर तक पहुंचे और महाराज रणजीत सिंह तथा हरिसिंह नलवा ने खैबर तक का इलाका पुनः जीतकर १०२० ई. का बना पाकिस्तान समाप्त कर दिया और हिन्दुस्तान की केसरी पताका फिर लाहौर, पेशावर और जमरूद पर फहरा दी।

अरब, तुर्क और मुगल आक्रान्ता हिन्दुस्तान में इस्लाम के रथ पर सवार होकर आए थे। उनका उद्देश्य इस्लाम फैलाना था। उन्होंने मुहम्मदी मजहब के नाम पर हमारे मन्दिर तोड़े, पुस्तकालय जलाए और स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों पर भी बेपनाह अत्याचार किए। इस प्रकार पहले के विदेशी

आक्रमणों से भिन्न यह एक विदेशी मजहब और बर्बर संस्कृति का आक्रमण था। उसका प्रतिरोध हिन्दुस्तान की भूमि के साथ-साथ उसकी आत्मा रूपी धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए भी था। फलस्वरूप इन आक्रान्ताओं ने इस प्रतिरोध को इस्लाम के विरुद्ध हिन्दू संस्कृति का प्रतिरोध भी माना। इस कारण कुछ विदेशी लेखकों ने इस संघर्ष को दो मजहबों के अनुयायियों के बीच संघर्ष के रूप में पेश किया। परन्तु यह उनकी भूल थी! यह एक राष्ट्रीय समाज (जो मजहब और पूजाविधि की दृष्टि से अनेक मतों और पंथों में बंटा हुआ था परन्तु जिसकी मूल संस्कृति और राष्ट्रीयता समान थी) का ऐसे विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध संघर्ष था जिनका उद्देश्य केवल लूटपाट करना और अपना राज्य स्थापित करना ही नहीं था अपितु अपने मजहब और उसके साथ जुड़ी हुई बर्बरता, असहिष्णुता और अनैतिकता को भी हिन्दुस्तान पर लादना और इसे एक इस्लामी राज्य बनाना था। यह एक लम्बा राष्ट्रीय संघर्ष था जिसमें विभिन्न पंथों और पूजाविधियों से युक्त राष्ट्रीय हिन्दू समाज ने विदेशी इस्लामवादी आक्रान्ताओं और उनके एजेटों के साथ लगातार लोहा लिया।

इस्लामी आक्रान्ताओं और उनके एजेंटों के साथ इस लम्बे और खूनी संघर्ष ने हिन्दू समाज में हिन्दुत्व की चेतना उग्र की और इसे सर्वमान्य अर्थ में राष्ट्रभाव का रूप दिया। इस प्रकार हिन्दुत्व अथवा भारतीय राष्ट्रीयता को इसके सकारात्मक आधार के साथ-साथ विदेशी आक्रान्ताओं और उनके विदेशी राज्य के विरुद्ध सांझे संघर्ष का नकारात्मक आधार भी मिला।

इस संघर्ष में हिन्दू राष्ट्र को पूर्ण सफलता मिलने से पूर्व ही हिन्दुस्तान पर एक और विदेशी आक्रमण की काली छाया पड़ने लगी। अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्तान की सत्ता हथिया लेने के कारण हिन्दुस्तान और हिन्दू राष्ट्र के स्वतन्त्रता संघर्ष का एक नया अध्याय शुरु हुआ।

१८५७ का विद्रोह (जिसे वीर सावरकर ने अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी है) ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध नए स्वतन्त्रता संघर्ष की पहली कड़ी था। विदेशी मुस्लिम शासक वर्ग के दिल्ली, लखनऊ इत्यादि में केन्द्रित एक भाग ने भी, जो अंग्रेजों के हाथों अपनी रही-सही सत्ता से वंचित हो जाने के कारण उद्विग्न था, इस नए संघर्ष के शुरू के दिनों में हिन्दू देश भक्तों और स्वतन्त्रता-सेनानियों को थोड़ा-बहुत योगदान दिया। परन्तु वे देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना से प्रेरित नहीं थे, इसलिए उनमें आदर्शवाद और उससे प्रेरित आत्मोत्सर्ग के भाव का अभाव था। फलस्वरूप बहादुरशाह जफर इत्यादि ने विफलता की घड़ी में गिड़गिड़ाकर ब्रिटिश शासकों से क्षमा और जीवनदान मांगा। केवल तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, राजा कुंवरसिंह और नानाराव पेशवा जैसे हिन्दू सेनानियों ने ही इस संघर्ष को अपने प्राणों के अन्तिम क्षणों तक देशभक्ति और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य की भावना से जीवन्त रखा।

अंग्रेज शासकों ने (जो इतिहासवेत्ता भी थे) इस 'विद्रोह' के सभी पहलुओं पर गम्भीरता से विचार किया। उन्हें अपने राज्य को स्थाई बनाने की दृष्टि से इसकी सीखों और फलितार्थ को समझने में देर नहीं लगी। वे समझ गए कि उनकी राज्यसत्ता और भारतीय साम्राज्य के लिए खतरा केवल हिन्दू

हैं जो शताब्दियों से विदेशी मुस्लिम राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता-संघर्ष करते आ रहे हैं। वे यह भी भांप गए कि आगे भी उनकी सत्ता को चुनौती हिन्दुओं की ओर से ही मिल सकती है। अतः उन्होंने इस खतरे का मुकाबला करने और अपने नवनिर्मित साम्राज्य की रक्षा और उसके हितों के पोषण के लिए सोच-समझकर नई नीति बनाई जिसके दो प्रमुख अंग थे।

इस नीति का पहला अंग मुस्लिम आक्रान्ताओं के वंशजों और उनके द्वारा हिन्दुओं में से बनाए गए मुसलमानों का अपने साथ मिलाना था। इस दृष्टि से उन्होंने इस्लामाबाद के अनुयायियों की हिन्दुओं (जो उनके लिए मजहबी दृष्टि से काफिर थे) के प्रति अलगाव ओर विरोध के भाव को उजागर किया और उसे उग्र करके उसका लाभ उठाने का फैसला किया। सर जान स्ट्रेची ने, जो भारत के ब्रिटिश गवर्नर जनरल की मन्त्रि परिषद् में वितमन्त्री थे, १८७४ में इस नीति को निम्न शब्दों में प्रतिपादित किया था –

''इन परस्पर विरोधी मतों (इस्लाम और हिन्दूवाद) के अनुयायियों का भारत में मौजूद होना हमारी राजनीतिक स्थिति को दृढ़ बनाने में बड़ा सहायक है। मुसलमानों का उच्च वर्ग (जिसके हाथ में कभी भारत की सत्ता थी) हमारे लिए शक्ति का स्रोत है। उससे हमें कोई हानि नहीं हो सकती। वे एक छोटा परन्तु बहुत सक्रिय और अपने राजनीतिक हितों की दृष्टि से जागरूक अल्पमत सम्प्रदाय है। उसके राजनीतिक हित हमारे राजनीतिक हितों के साथ मेल खाते हैं।''

१९०६ में आगा खां के नेतृत्व में मुसलमानों के एक शिष्टमंडल का शिमला जाकर उस समय के ब्रिटिश वाइसराय लॉर्ड मिंटो से मिलना और मुसलमानों के भारत में विशिष्ट ऐतिहासिक महत्त्व के नाम पर विधान सभाओं और नौकरियों में अलग मतदान और आरक्षण की मांग करना और लॉर्ड मिंटो द्वारा उसे तुरन्त स्वीकार कर लेना, इस सुविचारित ऐंग्लो-मुस्लिम गठजोड़ का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम था। लेडी मिंटो ने उसी दिन अपनी डायरी में उसके महत्त्व को इन शब्दों में आंका था, ''मेरे पति ने इस एक निर्णय के द्वारा भारत के छह करोड़ मुसलमानों को विद्रोही हिन्दुओं से सदा के लिए अलग कर दिया है।''

इस नीति का दूसरा अंग हिन्दू शब्द को इस्लाम के समकक्ष एक महजब का अर्थ देकर हिन्दुओं को मुसलमानों के समान हिन्दुस्तान में रहने वाले एक सम्प्रदाय का रूप देना और इस प्रकार इसे राष्ट्रबोधक संज्ञा से सम्प्रदाय बोधक संज्ञा बनाना था। मैकाले द्वारा प्रतिपादित अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को इस नीति को कार्यरूप देने का प्रभावी माध्यम बनाया गया। उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त शिक्षित हिन्दू इस नीति का सहज शिकार हुए। स्वर्गीय लाला हरदयाल के शब्दों में, इससे हिन्दू राष्ट्र में सामाजिक और मानसिक दासता पैदा हुई जो शारीरिक दासता से कहीं अधिक भयानक और स्थाई होती है।

हिन्दुत्व अथवा भारतीय राष्टवाद की जड़ें खोखली करने और हिन्दू समाज में हीन भावना और अपने आपको असहाय समझने की प्रवृत्ति पैदा करने की दृष्टि से हिन्दू शब्द का यह अवमूल्यन

अंग्रेज शासकों और उनके मानसपुत्रों का सबसे अधिक प्रभावी साधन सिद्ध हुआ। इसने हिन्दू समाज में हीन भावना पैदा कर दी और उसका अपने बल पर देश को स्वतन्त्र कराने का आत्मविश्वास हिला दिया। फलस्वरूप हर कीमत पर उन लोगों (जो अपने आपको अलग मुस्लिम राष्ट्र मानने लगे थे) को तुष्ट करने का प्रयत्न शुरू हुआ। जिसके परिणामस्वरूप १९४७ में भारत खंडित हुआ और भारत की भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत पाकिस्तान और बाद में बंगला देश रूपी इस्लामी राज्यों का उदय हुआ।

इतना ही नहीं वरन् विभाजन की विभीषिका के बाद भी कांग्रेस के नाम पर सत्ता में आया हिन्दू नेतृत्व अंग्रेजों द्वारा हिन्दू और मुसलमान के दो मजहबों के रूप में समकक्ष रखने के कुचक्र से निकल न सका। खंडित भारत में इस्लामबाद और मुस्लिम समस्या का पुनरोदय और १९४७ के पूर्व जैसे हालात का फिर पैदा होना उसी का परिणाम है। अब केवल खंडित हिन्दुस्तान की एकता ही नहीं बल्कि उसकी सुरक्षा और राष्ट्रीय पहचान भी खतरे में पड़ गई है।

इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि हिन्दू नाम के सही अर्थ और विस्तार को ठीक प्रकार समझकर उसका व्यापक प्रचार और उद्‌बोधन किया जाए। हिन्दुस्तान के हिन्दूपन अथवा हिन्दुत्व ने इसके राष्ट्रीय जीवन और पहचान को इतिहास के थपेड़ों और उतार-चढ़ाव के बीच कायम रखने में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसलिए इस बात की भी आवश्यकता है कि हिन्दुत्व, स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय जीवन ओर भारतीय राज्य के ढांचे में भी प्रतिबिम्बित हो। इस दृष्टि से हिन्दू, हिन्दू धर्म, हिन्दू समाज, हिन्दू संस्कृति और जीवन-पद्धति को सही रूप में समझना और उनकी विशिष्टता को तुलनात्मक और गुणात्मक दृष्टि से आंकना भी आवश्यक है।

धर्म और मजहब दो भिन्न परिकल्पनाएं हैं। मजहब किसी एक पैगम्बर और पवित्र पुस्तक से जुड़ी हुई कुछ निश्चित और अपरिवर्तनीय धारणाओं और मान्यताओं से जुड़ा होता है। यह अपने, पैगम्बर, अपनी पुस्तक और अपने मजहबी सिद्धान्तों को ही सत्य, सर्वश्रेष्ठ, प्रभु की दया और स्वर्गप्राप्ति का एकमात्र रास्ता मानता है। जो उस पुस्तक और पैगम्बर पर ईमान नहीं लाते उनको पथभ्रष्ट और काफिर समझता है जो न परमात्मा की दया के पात्र है और न उस मजहब के मानने वालों के प्रेम और भ्रातृभाव के। उन्हें अपने मजहब में लाना या उन्हें खत्म करना उन मानने वालों का परम कर्तव्य होता है। फलस्वरूप ऐसे मजहब एकांगी, अलगाववादी और अन्य मतों के प्रति असष्णिुता होते हैं। वे मानव जाति की एकता में विश्वास नहीं करते। उनका भ्रातृत्व और उनकी मानवता उस मजहब के मानने वालों तक सीमित रहती है। वे किसी प्रकार की मतभिन्नता और अपने सिद्धान्त से अतिक्रमण सहज नहीं करते। यही कारण है कि अन्य मजहब के ही नहीं, अपितु अपने मजहब के अन्तर्गत आने वाले फिरकों के लोग भी एक-दूसरे से झगड़ते हैं और मारकाट करते हैं। इस्लाम के अन्तर्गत शिया और सुन्नियों की मारकाट और ईसाइयत के अन्तर्गत रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंट लोगों के आपसी वैमनस्य और मारकाट का यही आधार है। आज के विज्ञान और तर्क के युग में भी

संसार के विभिन्न भागों में मजहब के नाम पर होने वाली मारकाट, दंगों और युद्धों का भी यही कारण है।

धर्म मजहब से सर्वथा भिन्न है। दोनों में मौलिक अन्तर है। मजहब मानव जाति को तोड़ता है, धर्म इसे जोड़ता है। धर्म मनुष्य की वह विशेषता है जो इसे पशुओं से भिन्न करती है। आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन पशु और मनुष्य में समान है। मनुष्य में धर्म ही विशेष होता है –

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणामः।
धर्माहि तेषामषिको विशेषो धर्मेण हीनः पशुभिः समाना।।

यदि सभी लोग धर्म पर चलें तो न केवल मजहब की आवश्यकता नहीं रहती अपितु राजा और राज्य भी अनावश्यक हो जाते हैं। भारतीय परम्परा और धर्मशास्त्रों के अनुसार एक समय था जब –

न राज्यं न च राजाऽसीत, न दण्डो न च दण्डिकः।
धर्मेसैव प्रजास्सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम्।।

न तो राज्य था, न राजा, न दण्डनीय अपराधी और न दंड। तब धर्म के द्वारा ही सम्पूर्ण प्रजा एक-दूसर की रक्षा करती थी।

इससे स्पष्ट है कि धर्म का अर्थ वह आचार संहिता है जो मनुष्य और मानव समाज को विशिष्टता और स्थायित्व प्रदान करती है, उसे धारण करती है और उसके लिए स्तम्भ का कार्य करती है। धर्म का शाब्दिक अर्थ भी यही है। यह संस्कृत की धृ धातु से निकला है और इसकी व्याख्या की गई है – **धारयते इति धर्मः**। धर्म किसी पैगम्बर, सन्त, पुस्तक, पंथ अथवा क्षेत्र विशेष के साथ न जुड़ा होकर सार्वभौमिक होता है। यह सारी मानव जाति के लिए और शाश्वत है। इसलिए इसे सनातन भी कहा जाता है।

धर्म के तत्त्व अथवा लक्षणों को मनु ने निम्न श्लोक में वर्णित किया है –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमन्द्रिय निग्रहः।
धीः विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

धर्म के ये दस लक्षण – धृति, क्षमा, दमन, चोरी न करना, शुद्धता, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ऐसे हैं, जिनका पालन करना सर्वत्र सबके द्वारा और सदैव आवश्यक है, भले ही व्यक्ति का मजहब, पूजाविधि और अन्य मान्यताएं कुछ भी हों। सबके लिए और सदा ग्राह्य और आचरण योग्य होने के कारण इन लक्षणों वाला धर्म सार्वभौतिक भी है और सनातन भी। उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता और मतवादिता नहीं। यह सारी मानव जाति और सारे संसार के लिए समान रूप में हितकर और वांछित है।

क्योंकि धर्म के इन शाश्वत तत्त्वों का उल्लेख और प्रतिपादन पहले-पहल वेदों में मिलता है, इसलिए इस सनातन धर्म को वैदिक धर्म भी कहा जाता है।

बौद्ध मत के प्रणेता महात्मा बुद्ध और जैन मत के प्रणेता बर्द्धमान महावीर ने धर्म के इन दस

लक्षणों के साथ अंहिसा को भी जोड़ा और उसपर विशेष बल दिया। इस प्रकार बौद्ध धर्म और जैन धर्म को सनातन वैदिक धर्म का ही परिवर्द्धित रूप कहा जा सकता है। उन्होंने मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षणों में से किसी को भी नकारा नहीं, केवल उनमें अंहिसा को जोड़कर उसे अपने समय की स्थिति के लिए और अधिक उपयुक्त बनाया।

हिन्दुस्तान के हिन्दू समाज ने इस सनातन धर्म और इसके परिवर्द्धित रूपों को पूर्णतया अपनाया। अन्य बातों में कई प्रकार की विविधता और विभिन्नतओं के बावजूद हिन्दू समाज ने इस आचार संहिता और नैतिकता को अपने व्यक्तिगत और सामूहिक आचरण का आधार बनाया और अपने आपको इस सनातन धर्म के साथ पूरी तरह जोड़ लिया। इसलिए हिन्दुस्तान में इसे हिन्दू धर्म भी कहा जाने लगा। इस प्रकार यह हिन्दुस्तान का राष्ट्रधर्म बन गया जो इसके अन्तर्गत अपने वाले सभी पंथों और जातियों के लिए समान था और है।

अंग्रेज शासकों और उनके मानसपुत्रों ने अंग्रेजी में धर्म का अर्थ रिलीजन अर्थात् मजहब करके हिन्दू धर्म के विषय में अनेक भ्रान्तियों को जन्म दिया और अनेक गलत धारणाएं फैलाई। इसके पीछे उनकी एक निश्चित योजना भी थी। वे हिन्दू धर्म को इस्लाम मजहब के समकक्ष रखकर हिन्दुस्तान के हिन्दू समाज को राष्ट्रीय समाज के आसन से हटाकर इस्लामवादियों की तरह एक सम्प्रदाय के रूप में पेश करना चाहते थे। इसमें इन्हें बहुत सफलता भी मिली। इसी कारण अनेक हिन्दू मनीषियों ने हिन्दुइज़्म के स्थान पर हिन्दुत्व शब्द के प्रयोग पर बल देना शुरू किया ताकि उन भ्रान्तियों का निराकरण किया जा सके और हिन्दू को उसके राष्ट्रीय आसन पर आसीन किया जा सके।

हिन्दुत्व उस सनातन और विशिष्ट जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक धारा का परिचायक है जिसके अन्तर्गत अनादिकाल से भारत में अनेक पंथ, विभिन्न मत और पूजा-पद्धतियां साथ-साथ बनती और पनपती रही है। सनातन हिन्दू धर्म के मूल तत्त्वों और मान्यताओं में उनकी सांझी आस्था उनके शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का आधार रही है।

हिन्दुइज़्म अथवा हिन्दुत्व की इस विशिष्टता को भारत के महान् दार्शनिक स्वर्गीय राष्ट्रपति **डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन** ने अपनी विख्यात पुस्तक **हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ** में बड़े सुन्दर और सरल शब्दों में व्यक्त किया है – **हिन्दुइज्म मुख्यतः एक जीवन पद्धति है। यह चिन्तन और विचार के मामले में सबको पूरी छूट देती है परन्तु आचरण के मामले में यह सबको उस आचार-संहिता में बांधती है जिसे हिन्दू धर्म कहा जाता है। कोई आस्तिक हो या नास्तिक, कोई सन्देहवाही हो या पलायनवादी, यदि वे उस संस्कृति और जीवन-पद्धति को अपनाते हैं, तो वे सभी हिन्दू हैं। हिन्दुइज्म मजहबी एकात्मकता पर बल न देकर आध्यात्मिकता और नैतिक अथवा धार्मिक आचरण पर बल देता है। इसका आग्रह किसी विशेष पूजा-पद्धति या मतवाद पर न होकर श्रेष्ठ व्यवहार और नैतिक मूल्यों पर है। 'सत्यं वद, धर्म चर' का उपदेश इसी का सत्य का द्योतक है। वे सभी लोग जो उन नैतिक मूल्यों से (जो हिन्दू धर्म की विशेषताएं हैं) को अपनाने को तैयार हों, हिन्दुइज्म की परिधि में आ सकते हैं। हिन्दुइज्म कोई एक सम्प्रदाय या पंथ न होकर उन सब व्यक्तियों और पंथों का समाहार है जो ठीक मार्ग को अपनाने और सत्य को ग्रहण करने को उद्यत हों।''**

जहां तक इस्लामी और ईसाई जगत् द्वारा मान्य मतवाद और महजब का सम्बन्ध है,

हिन्दुइज़्म यह मानकर चलता है कि मजहब में और आध्यात्मिक अनुभव के मामले में मतभेद और विभिन्न अनुभवों का होना स्वाभाविक है। हिन्दुइज़्म उस विश्वास को नकारता है जिसके अनुसार एक मजहब के मानने वालों के बाग के पौधे तो परमात्मा द्वारा आरोपित हैं और दूसरे मजहब वालों के बागों में पौधे शैतान ने लगाए है और जिन्हें हर कीमत पर नष्ट कर देना चाहिए। हिन्दुइज़्म सिद्धान्ततः इस बात को मानता है कि परमात्मा किसी का शत्रु नहीं। इसलिए हिन्दुइज़्म सभी प्रकार की पूजा-पद्धतियों और मतों को अपने अन्दर समाहित करता हुआ उनको ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है। यह किसी विश्वास को जो उससे मेल नहीं खाता, तलवार के बल पर खत्म करने की बजाय उसे ज्ञान के प्रकाश से सुधारने का पक्षधर है।

फलस्वरूप हिन्दुइज़्म की प्रतिबद्धता किसी एक पैगम्बर, पुस्तक अथवा अपरिवर्तनीय, मत के साथ न होकर धर्म के साथ है। यही इसमें और सेमेटिक मजहबों-यहूदीमत, ईसाई मत और मोहम्मदी मत में बुनियादी अन्तर है। वैष्णविज़्म, शैविज़्म, बुद्धिज़्म, जैनिज़्म, सिक्खिज़्म जैसे अनेक पंथ और सम्प्रदाय उस सांस्कृतिक धारा में समाहित हैं जिसे सामूहिक रूप में हिन्दुइज़्म, हिन्दुत्व और हिन्दू जीवन-पद्धति कहा जाता है। ये समय-समय पर विचारमान और विकासशील मानस की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उभरे हैं और उभरते रहेंगे। **इस प्रकार हिन्दुइज़्म एक गतिशील आन्दोलन है, रुका हुआ मानस नहीं। यह एक विकास क्रम है उसका परिणाम नहीं। यह एक गतिमान परम्परा है कोई अपरिवर्तनीय इल्हाम नहीं।**

भारत की धरती में से उपजे पंथ अथवा मतसमूह जिसे हिन्दूइज्म का सांझा मंडल– **कॉमनवेल्थ ऑफ हिन्दुइज़्म** भी कहा जाता है, को जोड़ने वाली डोरी सनातन हिन्दू धर्म और उससे जुड़े हुए नैतिक मूल्यों और आचरण के प्रति सांझी आस्था है। समान के रूप में इस संघ की कुछ और भी मान्यताएं हैं, जिनमें प्रमुख हैं, कर्म का सिद्धान्त, आत्मा की नश्वरता और पुनर्जन्म।

दूसरी सांझी कड़ी जो सभी हिन्दुओं को एक सूत्र में बांधती है, वह है मानसरोवर से निकली सिन्धु और ब्रह्मपुत्र नदियां और समुद्र से घिरी हुई हिमालय से कन्याकुमारी तक फैली हुई हिन्दू भूमि के प्रति मातृवत् श्रद्धा और आस्था। यह विशाल और विविधतापूर्ण देश, इस देश के वासियों की चाह, उनका पंथ, जाति और भाषा कुछ भी हो, शारीरिक, भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएं पूरी करता है और उनके अस्तित्व का आधार है।

इस प्रकार हिन्दू शब्द हिन्दुस्तान के उन सभी लोगों का जो इसकी संस्कृति, परम्परा, इतिहास और जीवन-पद्धति के प्रति अपनत्व का भाव रखते हैं और इसे अपनी मातृभूमि और पुण्यभूमि मानते हैं, का सांझा नाम है।

वीर सावरकर ने हिन्दू शब्द के इस व्यापक अर्थ और विस्तार को अपने विख्यात श्लोक द्वारा प्रस्तुत किया था –

आसिन्धु सिन्धु - पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।

पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरितिस्मृतः।।

वे सभी भारतीय जिन्होंने हिन्दुत्व की भावना से प्रेरित होकर शताब्दियों तक विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों के साथ संघर्ष किया, जिन्होंने इस देश के गौरव, स्वराज्य और स्वधर्म की रक्षा के लिए उच्चतम बलिदान दिए, जो हिन्दुस्तान की मुख्य राष्ट्रीय धारा और रीढ़ की हड्डी है, हिन्दू हैं। यह हिन्दूभूमि उनका जीवनस्रोत है और वे इस भूमि के संबल हैं। उनका भूतकाल, वर्तमान और भविष्य इसी भूमि से जुड़ा हुआ है। वे हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय समाज है, बहुमत या फिरका नहीं। हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र है। राष्ट्र की परिकल्पना के वैज्ञानिक और वस्तुपरक विश्लेषण और उसके संदर्भ में हिन्दुस्तान और हिन्दू समाज को आंकने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

इतिहास राष्ट्रमानस के लिए प्रेरणा का स्रोत बने

मातृभूमि, पुण्य भूमि भारत की प्राचीनता और गौरवमय अतीत को प्रकाश में लाकर विदेशियों तथा उनके संकेत एवं अनुसरण पर कुछ भारतीय इतिहासकारों द्वारा विकृत किए गए भारत के इतिहास को भारतीय ऐतिहासिक स्रोतों, लोकश्रुतियों, नवीन पुरातात्त्विक खोजों और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी गई शोध सामग्री को संकलित करके, ऐसा इतिहास लिखने की आवश्यकता है जो केवल पराजय की ही कहानियां न कहे, अपितु वह राष्ट्रमानस के लिय प्रेरणा का स्रोत बने जिसे पढ़कर हम गौरव से अपना सर ऊंचा कर के कह सकें कि भारत विश्व का गुरु रहा है और आज भी इसमें विश्व गुरु बनने का पूर्ण सामर्थ्य है।

ठाकुर रामसिंह

संवीक्षण

पौराणिक इतिहास का वैज्ञानिक आधार

डॉ. ठाकुर प्रसाद वर्मा

पुराण भारत की सभ्यता एवं संस्कृति की अमूल्य निधियां हैं। इनमें भारत ही नहीं संसार के इतिहास का उत्स तो निहित हैं ही समस्त मानवता के लिए जो कुछ भी कल्याणकारी हो सकता है वे सभी बातें और आचरण इनमें सन्निहित हैं। पुराण इतिहास ग्रन्थ हैं। अतः इनमें समय-समय पर समाज की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन एवं परिवर्धन होते रहे हैं। विभिन्न समयों में समाज पर आने वाली विपत्तियों से किस प्रकार के आचरण से नैतिकता एवं समन्वयपूर्वक निपटा जा सकता है इसका उपाय इन पुराणों एवं इतिहासग्रन्थों में बताया गया है। हमारे संस्कृति केन्द्र तीर्थों के विवरण, उनकी यात्रा करके संस्कृति के मूल-तत्त्वों को बनाये रखने का प्रयत्न, पुराने इतिहास को सरल रूप से समझाने के लिए प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिनिधि देवताओं को मानवीय रूप में ढालकर प्रतीकों की रचना तथा खगोलीय, भूगोलिक एवं भूगर्भिक घटनाओं को इतने सरल ढंग से रखना कि समाज का अन्तिम व्यक्ति भी स्मरण कर सके, आदि इसके मूल लक्षण हैं। कलाओं कौशलों के तत्वों की विवेचना भी पुराणों में मिलेगी। सबसे बड़ी बात यह है कि व्यक्ति एवं संसार के रचयिता के बीच के सम्बधों की विवेचना के लिए मानव की मूलप्रकृति, भक्ति के माध्यम से मानवमूल्यों को बनाये रखने की प्रणाली एक अद्‌भुत आविष्कार कहा जा सकता है। कहना नहीं होगा कि पुराणों की प्रकृति ही विश्वकोशीय है।

लेकिन पुराण वास्तव में, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, मूल रूप से संसार में होने वाली पुरानी घटनाओं का विवरण रखने के स्रोत के रूप में कल्पित किए गए थे। इन्हें वेदों से भी प्राचीन माना गया है।[१] जो कुछ भी हो पुराणों का मुख्य विषय इतिहास ही माना गया है तथा इनके पांच लक्षण बताए गये हैं, सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश तथा वंशानुचरित।[२] इनमें प्रथम दो तो सृष्टि विद्या से सम्बन्धित है लेकिन मन्वन्तर धरती के इतिहास का भाग हैं तथा खगोलीय घटना से जुड़े हैं, अतः इसका खगोल विज्ञान से भी सम्बन्ध होते हुए भी यह सूर्यमण्डल तथा धरती के जीवनकाल से जुड़ा हुआ है। मन्वन्तर धरती पर जीवों की उत्पति तथा विकास के विभिन्न चरणों को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार वंश तथा वंशानुचरित इस पृथिवी पर सातवें मन्वन्तर में पैदा हुए मानव के इतिहास से सम्बन्ध रखता है। इतिहास का अर्थ 'इति' अर्थात् ऐसा, 'ह' अर्थात् निश्चयपूर्वक, 'आस' अर्थात् हुआ, होता है। इसका मतलब यह है कि अब तक सृष्टि में जो कुछ भी हुआ है उसका लेखा-जोखा इतिहास में दिया जाता है। अतः हमारे इतिहास में 'प्राग् इतिहास' की अवधारणा ही नहीं है। लेकिन स्पष्ट ही इन सबके केन्द्र में मनुष्य ही है। इसी कारण पुराणों में वास्तुशास्त्र, संगीत, अन्य कलाओं के साथ-साथ विज्ञान सम्बन्धी विविध विषय भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ वर्णित हैं।

पौराणिक इतिहास के अनुशीलन से हमारी यह धारण सुदृढ़ हुई है कि इसको आज के वैज्ञानिक कसौटी पर परखा जा सकता है। इनमें खगोल विज्ञान (Astrology), भूगर्भविज्ञान (Geology), भूगोल (Geography), पर्वतोत्थानशास्त्र (Orogeny), सृष्टिविद्या (Origin of Universe) तथा जीवन की उत्पति (Origin of life on earth) आदि विज्ञान की ऐसी शाखाएं हैं जिनको इतिहास के अध्ययन में प्रमुखता से गिनाया जा सकता है।

सबसे पहले हम खगोलविज्ञान के उस पक्ष की चर्चा करेंगे जो सीधे मानव जीवन तथा इतिहास से सम्बन्ध रखते हैं। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जब से मानव ने होश संभाला है तब से ही वह सूर्य तथा धरती की गतियों को देखता रहा है। इनमें मानवता के सबसे पुराने साहित्य ऋग्वेद के समय से ही वह इनके बारे में सोचता रहा है तथा खगोलीय पिण्डों की गतियों के बारे में सूक्ष्मता से जानकारियां एकत्रित करता रहा है। इस विषय में ऋग्वैदिक जन का ज्ञान आज के लोगों के लिए भी आश्चर्य तथा स्पर्धा का विषय बना हुआ है। खगोलीय गतिविधियों की जानकारी हम यहां सरल ढंग से वर्णित कर रहे हैं।

पृथिवी की दो गतियां हैं। एक उादाहरण से शुरू करते हैं। लट्टू तो हम सब ने नचाया होगा। वह दो प्रकार से नाचता है। एक तो वह अपनी धूरी पर नाचता है। वह नाचते समय कुछ अंशों तक एक और झुक जाता है। दूसरी बात यह है कि वह नाचते-नाचते एक परिक्रमापथ पर चलता भी है। ठीक यही दशा हमारी पृथिवी की है जो अन्तरिक्ष में अपनी धुरी पर नाचते हुए २३.४° एक और झुकी हुई भी है। इसमें वह २३ घण्टे ५६ मिनट का समय लेती है। विषुवत् रेखा पर यह गति १००० कि.मी. प्रति घण्टा होती है। इस गति के कारण ही पृथिवी पर दिन और रात होते हैं। एक ओर झुके होने के कारण पृथिवी पर दिन और रात्रि के समय घटते-बढ़ते रहते हैं। इसके आधार पर हिन्दुओं ने विशाल कालगणना के माप तैयार किए जिसकी चर्चा आगे करेंगे। पृथिवी की दूसरी गति अपने परिक्रमापथ पर सूर्य के चक्कर लगाने के रूप में होती हैं। पृथिवी की सूर्य से दूरी नौ करोड़ तीस लाख मील है तथा १८.५ मील प्रति सैकण्ड या लगभग ६६,६०० प्रति घण्टा की गति से यह अपने परिक्रमापथ पर दौड़ रही है। सूर्य का एक चक्कर पूरा करने में ३६५ दिन, ५ घण्टे, ४८ मिनट तथा ४६ सैकण्ड लगते हैं। इस अवधि को एक वर्ष कहा जाता है। अपनी धुरी पर एक ओर झुके होने के कारण पृथिवी पर जाड़ा और गर्मी के मौसम होते रहते हैं जिससे दोनों गोलार्धों में वनस्पति तथा अन्य जीवन का चक्र संतुलित रहता है।

कालगणना का खगोलीय आधार

प्राचीन भारतीयों ने पृथिवी की इन दोनों प्रकार की गतियों का प्रयोग विशाल खगोलीय गणनाओं को करने के लिए किया। आजकल वैज्ञानिक प्रकाश की गति (तीन लाख कि.मी. प्रति सैकेण्ड) को इकाई मान कर ब्रह्माण्डीय पिण्डों की दूरी तथा गति की माप करते हैं। यद्यपि सूर्य किरणों की गति भारतीयों को ज्ञात थी तथा चौदहवीं शताब्दी में सायणाचार्य ने इसका उल्लेख ऋग्वेद के भाष्य में किया है। लेकिन भारतीय वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्डीय दूरियां नापने के लिए इसका उपयोग नहीं किया है। अस्तु।

वर्षमान बड़ा क्यों होता जा रहा है?

भारतीय कालगणना का आधार पृथिवी की गति है जो वैज्ञानिक तो है ही, दैनन्दिन व्यवहार के अनुरूप भी है। हम बता चुके है कि हमारी पृथिवी द्वारा सूर्य का चक्र पूरा करने में एक वर्ष का समय लगता है जो वर्तमान में ३६५ दिन, ५ घंटा, ४८ मिनट तथा ४६ सेकण्ड होता है। लेकिन वेदों में ३६० दिनों का ही एक वर्ष माना गया है। संसार की सभी पुरानी संस्कृतियों में ३६० दिनों का वर्ष माना जाता था। इसी के आधार पर एक वृत्त को ३६० अंशों में बांटा जाता है जो सभी प्रकार की ज्यामितिक गणनाओं में अभी भी मान्य है। प्रश्न यह है कि ऐसा कैसे हो गया कि वर्तमान में ५ दिन, ५ घण्टा, ४८ मिनट तथा ४६ सेकण्ड बढ़ गया।

इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड का निरन्तर विस्तार हो रहा है। सभी ग्रह-नक्षत्र एक दूसरे से दूर भाग रहे हैं। पृथिवी तथा सूर्य के बीच की दूरी बढ़ रही है तथा पृथिवी का प्रदक्षिणावृत (परिधि) १० हजार वर्षों में १ कि.मी. बढ़ जाता है। इसके साथ ही उसकी घूर्णन गति में भी कमी आ रही है। इन दोनों कारणों से धरती के परिक्रमाकाल में १ करोड़ ६० लाख वर्षों में एक घण्टे की वृद्धि हो जाती है। गणना करने पर काल में ५ दिन, ५ घण्टा, ४८ मिनट तथा ४६ सेकण्ड बढ़ने के लिए लगभग दो अरब वर्षों का समय लगता है। भारतीयों का सृष्टि संवत् अब से एक अरब पञ्चानवे करोड़ अठ्ठावन लाख पचासी हजार एक सौ अठारह वर्ष (१,९५,५८,११८ वर्ष) (ई. सन् २०१५ में) हो गये अर्थात् इस धरती पर जीवन की सृष्टि इतने वर्ष पूर्व शुरू हुई थी। लेकिन ब्रह्मा को सृष्टि रचना की तैयारी में एक करोड़ सत्तर लाख चौंसठ हजार वर्ष लग लगए थे जिसके जोड़ लेने पर यह गणना एक अरब, सत्तानवे करोड़ ऊनत्तीस लाख उन्नचास हजार सात सौ अठारह वर्ष (१,९७,२९,४९,११८ वर्ष) हो जाती है। इतने वर्ष पूर्व पृथिवी सूर्य की एक परिक्रमा ३६० दिनों में ही करती थी। यह गणित की बात है। हिन्दू अपना पञ्चांग सौर तथा चान्द्र की गति से बनाते हैं और तिथियों के निर्धारण के लिए चान्द्र गणना से उनका काम चल जाता था। इस व्यवस्था में ३६० दिनों का ही वर्ष होता है तथा वर्तमान की कमी पूरा करने के लिए हर तीसरे वर्ष एक अतिरिक्त मास मलमास या पुरुषोत्तममास के रूप में जोड़ दिया जाता है। यूरोप में केवल सूर्य की गति पर आधारित काल गणना चली आ रही थी तो शताब्दियों बाद वर्षमान की गणना में त्रुटि अनुभव होने लगी जिसको पूरा करने के लिए नये सिरे से वर्ष शुरु करना पड़ा और अचानक लोगों के जीवनकाल में कई दिनों का अन्तर आ गया।

कालगणना का भूगोलीय आधार

भारतीय कालगणना के लिए मानव वर्ष तथा दैवी वर्ष को आधार बनाया गया है। विषुवत् रेखा पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं अतः वहां दिन और रात की अवधि प्रायः समान होती है लेकिन दोनो ही गोलार्धों पर ध्रुवों की ओर बढ़ने पर इसमें अन्तर पड़ने लगता है। हम चर्चा कर चुके हैं कि धरती अपनी धुरी पर २३.४ अंश झुकी हुई है अतः ध्रुवों पर छः महीने का दिन तथा छः महीने की रात होती है। इन्हें देवों के दिनों तथा देवों के रात नाम दिया गया। इस प्रकार देवों के अहोरात्रि में मानवों के ३६० दिन-रात या एक वर्ष होता है। अतः एक दैवीवर्ष ३६० मानवी वर्ष का होता है।

ऐसा माना गया कि एक युग १००० दैवीवर्षों का होता है। इसके प्रारम्भ एवं अन्त में एक सौ वर्षों का सन्धिकाल माना गया। अतएव एक युग १२०० दैवी वर्षों का हुआ। इसको मानवी वर्ष बनाने के लिए ३६० से गुणा करना पड़ेगा जो ४ लाख ३२ हजार वर्षों का होता है। कालगणना की यह सबसे छोटी इकाई मानी गई और इसके कलि नाम दिया गया। कलि = कलने या गणना करने के कारण है न कि अच्छे या बुरे होने के कारण। वर्तमान में कलियुग बुराइयों के युग के रूप में जाना जाता है। इसका दूना द्वापर, तीनगुणा त्रैता तथा चार गुणा कृत (अर्थात् चार) कहा गया। इन चारों को मिलाकर एक चतुर्युगी बनती है जो इस प्रकार है –

कलि ४,३२,००० मानववर्ष, द्वापर ८,६४,००० मानववर्ष

त्रेता १२,१६,००० मानववर्ष कृत १७,२८,००० मानववर्ष

= योग ४३,२०,००० वर्ष या १२, ००० देववर्ष अथवा एक चतुर्युगी।

इस तरह पृथिवी का सम्पूर्ण जीवनकाल १००० चतुर्युगियों का माना गया है जो ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का होता है। इसका उल्लेख अथर्ववेद में इस प्रकार हुआ है –

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनुमन्यन्तामहृणीयमानाः।। ८/२/२१

अर्थात् '' मैं एक सौ अयुत (यानी १०,०००x१००) वर्षों (= हायनान) का २/३/४ वर्षों का युग बनाता हूं, जिसमें इन्द्र की अग्नि, विश्वेदेवा तथा प्रत्येक मनु (अनु मन्यन्ता) नष्ट हो जाते हैं।'' अर्थात् एक अयुत अथवा दस हजार वर्षों का एक सौ गुना या १,००,००,००० होता है जिसमें बांए ओर से 'अंकानां वमो गतिः' के अनुसार २/३ और चार रखें, इस प्रकार जो अंक मिलेंगे वे ४,३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्ष बनते हैं। यह पृथिवी की सम्पूर्ण आयु है जिसके बाद पृथिवी और उस पर जीवन नष्ट हो जायेगा।

इस मूल के साथ प्राचीन भारतीयों ने बहुत बड़ी-बड़ी संख्याओं को निकाला है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के काल से सम्बन्ध हैं। लेकिन उसके विस्तार में न जा कर हम यहां पृथिवी के जीवनकाल की चर्चा करेंगे। इस विशाल कालखण्ड को १४ भागों में इस लिए बांटा गया कि इस अवधि में धरती सहित हमारा सौरमण्डल आकाशगंगा के १४ चक्कर लगा लेता है। प्रत्येक चक्र को मन्वन्तर नाम दिया गया जिसमें जीवन के विकास के अपने लक्षण होते हैं तथा अगले चक्र में जीवन कुछ और विकसित हो जाता है। अब तक छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। और सांतवां मन्वन्तर चल रहा है जिसमें अब तक का सबसे विकसित प्राणी मनुष्य अस्तित्व में है। जीवन विकास की दृष्टि से यह आरोह काल चल रहा है अर्थात् सूक्ष्म से स्थूलता की ओर बढ़ रहा है इसके बाद आठवें मन्वन्तर से अवरोह काल प्रारम्भ होगा अर्थात् स्थूलता से सूक्ष्मताकी ओर चलेगा और चौदहवें मन्वन्तर की समाप्ति पर सब कुछ सूक्ष्म में लीन हो जाएगा। श्री वासुदेव पोद्दार के अनुसार '' मन्वन्तर विज्ञान भारतीय ऋषि-चिन्तन की महती मनीषा का एक ऐसा अपूर्व विज्ञान है जिसकी सहायता से हम ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष के इस ग्रह के भूत, भविष्य और वर्तमान का ऐतिहासिक काल प्रवाह बड़ी सहजता से जान सकते हैं। किसी भी मन्वन्तर के किसी भी महायुग के किसी भी कालबिन्दु पर पृथ्वी के इतिहास की क्या गति, यति और

नियति है – इस विज्ञान की सीमा में अलक्षित नहीं। पृथ्वी के भावी दो अरब से अधिक अवशिष्ट काल में जीवन का प्रवाह और जैव-विकास का स्वरूप किन-किन घुमावौ और परिस्थितियों से होता हुआ गतिशील होगा उसका आकलन मन्वन्तर विज्ञान के अध्ययन द्वारा जाना जा सकता है।''[३] मन्वन्तर विज्ञान[४] के तत्वों की सूक्ष्म विवेचना में न जाकर हम पुनः इतिहास की ओर लौटते हैं।

पृथिवी पर जल और जीवन

पुराणों के अनुसार पृथिवी पर पहले जल ही जल था। नारा अथवा जल में रहने के कारण ही भगवान् को नारायण कहा जाता है।[५] ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के परिशिष्ट और यजुर्वेद में भी कहा गया है–

अद्भ्यः सम्भृतःपृथिव्यै रसाच्चविश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टाविदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे।।

पुरुषसूक्त, यजुर्वेद ३१/१७

अर्थात् पहले पृथिवी पर जल तथा विश्वकर्मण (नारायण) ही थे। उसके त्वष्टा ने पूर्व में स्थित मर्त्य तथा देवों से विविध रूपों को गढ़ा। पृथिवी पर जल से जीवन की उत्पत्ति का पहला लिखित उदाहरण है। यह ध्यान रखने की बात है कि सम्पूर्ण ज्ञात ब्रह्माण्ड में केवल हमारी पृथिवी पर ही जल वाष्प, द्रव तथा ठोस रूपों में उपलब्ध है तथा निरन्तर एक से दूसरे तथा तीसरे रूप धारण का चक्र लगता रहता है जो जीवन की विविधता के लिए परम आवश्यक तत्त्व है। पृथिवी के जन्म के बाद से ही जब से इसके वातावरण में जल कैद हुआ है तब से ही जीवन के विविध रूपों का अस्तित्व में आना प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक नए मन्वन्तर में जीवों में भौमिक तत्त्व बढ़ जाते हें तथा सूक्ष्म तत्त्व घटते जाते हैं जिसको वैज्ञानिकों ने इवोल्यूशन (Evolution) नाम दिया है। लेकिन मन्वन्तर का विकासवाद इवोल्यूशन से भिन्न है। यदि संसार के संग्रहालयों में संरक्षित अरबों की संख्या में संरक्षित जीवश्मों को मन्वन्तर के अनुसार व्यवस्थित करके अध्ययन किया जाए तो चित्र में अधिक स्पष्ट होने की सम्भावना है। लेकिन इसके लिए धरती जीवन के पाश्चात्य कालक्रम पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

धरती के जल के अवतरण की कथा प्रतीक रूप में गंगावतरण के माध्यम से कही गई है। इस सम्बन्ध में कई कथायें हैं और इनमें इतिहास के कालक्रम को भी खोजा जा सकता है। इनमें दो विशेष कथा प्रसिद्ध हैं। एक कथा श्रीमद्भागवत पुराण[६] में आती है, जिसमें गंगाजी मेरु पर्वत पर उतरती हैं। ब्रह्माण्ड में गंगा विष्णुपदी कही गई हैं। वहां से इन्दुमण्डल होते हुए ये मेरु के शिखर पर ब्रह्मपुरी में उतरती हैं। वहां से वे सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इन चार नदियों के रूप में मेरु के चारों दिशाओं में बहती है। यह कथा पूर्व काल की है जब मानव (वैदिक) सभ्यता मध्य-एशिया में जन्म ले रही थी। इसके बाद गंगावतरण की दूसरी कथा हिमालय के उत्थान के साथ जुड़ी है। यह कथा रामायण[७] तथा महाभारत[८] में मिलती है। इसमें भागीरथ का नाम जुड़ा हुआ है। गंगा हिमालय पर उतरती हैं। कहा गया कि वे आकाश से शिव की जटाओं में उतरी जहां भटकती रहीं फिर शिव ने उन्हें मुक्त कर दिया और वे सात नदियों के रूप में बहने लगी।

महाभारत में इन नदियों के नाम दिए गए हैं।[६] लेकिन यहां हम जिस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं वह यह है जो आकाशीय जल इस धरती के वातावरण में समा गया था वह बाहर नहीं निकल सकता। वह पहले पर्वतों की चोटियों पर उतरा और हिमनदों के रूप में जम गया। इन्हीं को वेदों में वृत्र कहा गया है जिसको मारकर इन्द्र ने नदियों के रूप में मुक्त किया। अभी भी समस्त वातावरण में यह जल वाष्प रूप में वर्तमान रहता है जिसे आर्द्रता या नमी कहते हैं। धरती पर यह द्रव एवं ठोस रूप में वर्तमान है। जीवन को धारण करने के लिए यह जल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। इनका कोई भी असन्तुलन जीवन के लिए अनिष्टकारी हो सकता है। इसकी कथा हमारे पुराणकारों ने गंगावतरण के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप से जन-जन को शिक्षित करके स्मरण दिलाते रहने का प्रयास किया है, भले ही सभी लोग उसकी वैज्ञानिक महत्ता को न समझ सकें।

वैवस्वत मन्वन्तर

अब तक छः मन्वन्तर बीत चुके हैं और सातवां मन्वन्तर शुरु हुए १२ करोड़ पांच लाख तेंतीस हजार वर्ष बीत चुके हैं। इसकी चर्चा की जा चुकी है अब इस मन्वन्तर की चर्चा करते हैं।

इस मन्वन्तर को वैवस्वत इस लिए कहा जाता है कि वर्तमान मनु के पिता विवस्वान थे जो देवता माने जाते हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो कथा प्रचलित है उसमें बड़ी सफाई के साथ देवों और मर्त्यों को अलग किया गया है। विवस्वान दैवी तत्त्व हैं। उनकी पत्नी सरण्यू त्वष्टा की पुत्री है। उससे सबसे पहले यम-यमी युगल पैदा होते हैं। उसके बाद सरण्यू अपनी सवर्णा (छाया) को विवस्वान के पास छोड़कर चली जाती है। उससे मनु पैदा होते हैं। फिर विवस्वान को असलियत का पता चलता है तो वे सरण्यू को खोजते हुए उत्तरकुरु में मिलते हैं तथा अश्विनीकुमार (युगल) पैदा होते हैं। इस प्रकार मर्त्य और दैवी तत्त्व पृथक् किए गए हैं। ऋग्वेद(१०/१७/१) में भी इस बात का उल्लेख किया गया है, लेकिन विस्तार भय से उन बातों की चर्चा नहीं करेंगे। लेकिन अश्विनीकुमार उत्तरकुरु में पैदा हुए थे। वह उल्लेखनीय इस लिए है कि यह स्पष्ट किया जा सके उस काल में वह क्षेत्र मनु के लिए गम्य था तथा घोड़ों की उत्पत्ति के लिए विख्यात भी। इन मनु से ही मानव वंश चला और मानव इतिहास का प्रारम्भ उन्हीं से किया जाता है। भारतीय पुराणों तथा महाकाव्यों में यह इतिहास के रूप में वर्णित है जिसमें वे एक नौका पर बैठ कर प्रलय से बच जाते हैं तथा उत्तरगिरि (मेरु) पर नौका बन्धन करने के बाद सृष्टि प्रारम्भ करते हैं। इस प्रलय की स्मृति सभी प्राचीन सभ्यताओं में मिलती है लेकिन किंचित विद्रूप कथा के रूप में। यह इस बात का साक्षी है कि सभी मानवों का प्रारम्भ एक ही स्रोत से हुआ था और आगे चल कर वे विभिन्न जनजातियों के रूप में विभक्त होकर अलग-अलग संस्कृतियों, भाषा-भाषियों एवं धर्मों के रूप में बंट गए। अथर्ववेद (१२/१/४५) में कहा गया है कि ''जन बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्'' अर्थात् ''पृथिवी नाना प्रकार के धर्मों का पालन करने वाले तथा अनेक भाषाओं के बोलने वाले मनुष्यों को धारण करती है।'' बायबिल तथा कुरान में जो कथा मिलती है वह इतिहासज्ञों द्वारा सर्वाधिक प्रचारित है लेकिन पुराणों की कथा देखने के बाद यह लगता है कि वह किसी असली चित्र का कार्टून मात्र है। अब हम मनु की कथा में सन्निहित

वैज्ञानिक तथ्यों की विवेचना करेंगे जिसमें इतिहास, भूगोल, भूगर्भविज्ञान, पर्वतोत्थान आदि कई शास्त्रों में विज्ञान की वर्तमान प्रगति का सहारा लिया गया है।

मनु की नौका

बायबिल में मनु की नौका की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई की नाप दी गई है तथा इसको विज्ञानोचित सिद्ध करने के लिए अनेक लेख लिखे गए हैं जिनके बारे में अन्तर-तंरग (Internet) से जाना जा सकता है। यहां हम पौराणिक नौका पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

यह आस्था नहीं वैज्ञानिक इतिहास का प्रश्न है कि जिस नौका को खींचने के लिए स्वयं भगवान् विष्णु को मत्स्य का रूप धारण करना पड़ा वह क्या कोई साधारण नौका हो सकती है। इस प्रश्न पर विचार करते समय हमारे मन में आज के वैज्ञानिक जगत में प्रचलित महाद्वीपीय अपसरण (Continental Drift) के सिद्धान्त की बात आई जिसकी चर्चा यहां करना चाहते हैं।

यह नौका भारतीय महाद्वीप हो सकता है। ऋग्वेद (१०/६३/१) में पृथिवी को दैवी नौका (पृथिवी दैवी नाव) कहा गया है। इस आधार पर यह सम्भव है कि मनु की वह नौका एक महाद्वीप रहा हो। महाद्वीपीय विचलन के सिद्धान्त के अनुसार समस्त पृथिवी पर भारतीय महाद्वीप ही सबसे चंचल रहा है जिसने अन्टार्कटिका से टूट कर लगभग १००० कि.मी. की यात्रा की और एशिया महाद्वीप से जुड़ कर धरती के सबसे विकसित प्राणी, मानव की उत्पत्ति का मार्ग प्रशस्त किया। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार इस यात्रा में कई पड़ाव आये और यह रुक-रुक कर चलता रहा है।[१०] कहा जाता है कि एशिया भी दक्षिण की ओर बढ़ रहा था तो उत्तर की ओर बढ़ता हुआ भारतीय महाद्वीप उससे टकरा गया। इस प्रकार सुमेरु उठने लगा जिसके शृंग पर मत्स्य भगवान ने मनु की नौका को प्रतीकात्मक रूप से बांध दिया। इस प्रक्रिया में भी हजारों लाखों वर्ष लग गए होंगे। यह एक भूगर्भिक घटना थी। परिणामस्वरूप एशिया और यूरोप की पर्वत शृंखलाएं अस्तित्व में आई। उल्लेखनीय है कि ऐसी एक भूगर्भिक घटना दक्षिणी यूरोप में भी हुई जब अफ्रीका महाद्वीप उत्तर की ओर बढ़ा तथा इटली का प्रायद्वीप यूरेशिया से टकरा गया और इस प्रकार आल्प्स पर्वत शृंखला अस्तित्व में आई। हिमालय की तुलना में इसका अल्पनाम स्टीक तथा सार्थक कहा जाएगा। दो महाद्वीपों के टकराव से पर्वत उत्थित होने लगे। सबसे पहले मेरु की उत्पत्ति हुई। पर्वतानां महामेरुः सर्वेषामग्रजः स्मृतः (महा. १४/४४/१३)। मेरु की उत्पत्ति के बाद हिमालय का उठना शुरु हुआ।

पहले यह क्षेत्र समुद्र था जिसे आधुनिक भूवैज्ञानिक टाइथस सी कहते हैं तथा भारतीय वाङ्मय में उत्तर समुद्र कहा जाता है। हिमालय के दक्षिण का भाग, जो आजकल गंगा का मैदान है उस समय उत्तर समुद्र था। इसकी स्मृति भारतीयों को कम से कम बारहवीं शताब्दी तक तो थी ही। लार तथा गोरखपुर से प्राप्त दो ताम्रपत्रों में पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के उत्तरी भाग में राज्य करने वाले मलयकेतुवंश के राजा कीर्तिपाल तथा उसके पुत्र रामपाल ने अपने राज्य का नाम दरदगण्डकीदेश बताया है तथा उत्तरसमुद्र और सौम्यसिन्धु भी कहा है।[११] इस बात की कल्पना करना कठिन नहीं है कि चारों ओर से स्थल से घिर गया समुद्र किस प्रकार सौम्य सिन्धु बन जाता है। उस क्षेत्र के रहने वाले बीसवीं शताब्दी में भी इसकी भयावहता से परिचित थे जब कि बरसात में मीलों तक

जल ही जल दिखाई पड़ता था और अनेक छोटी नदियां मिल कर समुद्र का रूप धारण कर लेती थीं।

कहने का तात्पर्य है कि विन्ध्य से लेकर हिमालय की तलहटी का भाग किसी समय समुद्र था। इस बात को प्रायः सभी भूगर्भशास्त्री मानते हैं लेकिन उसका सम्बन्ध मानव इतिहास से हो सकता है इसकी कल्पना भी यूरोपीय ढंग से दीक्षित इतिहासकार के लिए अति दुरूह है। इसके सम्बन्ध में कुछ और बातें कहने के बाद उसकी चर्चा करेंगे। जहां तक इस मैदान का प्रश्न है, यह पूर्व में असम श्रेणी से लेकर पश्चिम में पंजाब के साल्ट रेन्ज तक विस्तृत है। ओल्ढेम के अनुसार हिमालय के पास इसकी गहराई १५००० से २०००० फीट तक है। दक्षिण से उत्तर तक यह औसतन प्रति सौ मील पर १३० फीट गहरी होती गई जो उत्तर तक जाते-जाते १३००० से १५००० फीट हो गई है।[९२] भूगर्भूशास्त्रियों ने इस मैदान में तल पर विन्ध्य की तीन पर्वतश्रेणियों का उल्लेख किया है। बिहार में सहरसा पर्वतश्रेणी, मध्य में फैजाबाद पर्वतश्रेणी ओर पश्चिम में हरिद्वार पर्वतश्रेणी।

हिमालय के सामने का यह गर्त दक्षिण में विन्ध्य की पहाड़ियों तक विस्तृत था। इसकी जानकारी सलखन के जीवाश्मपार्क कहे जाने वाले क्षेत्र से भी होती है, जो मिर्जापुर के समीप सोनभद्र जिले से मिला है। इसकी प्राचीनता एक अरब ६० करोड़ वर्ष मानी जाती है। इसकी शृंखला बिहार के रोहतास जिले में विन्ध्य सुपरग्रुप के सलखन चूनापत्थर से प्राप्त Mesoproterzoic Microbiotas का अध्ययन डॉ. मुकुन्द शर्मा[९३] ने किया और १६०० मिलियन वर्ष पूर्व का बताया। इसमें Cyanobacteria की बहुतायत बताई गई है। इन सूक्ष्म जीवों को जीवन के प्रारम्भिक सोपान का बताया गया है। हमारे मत से इन्हें प्रथम या द्वितीय मन्वन्तर के जीव मानना चाहिए। किसी समय विन्ध्य पर्वत की घाटी का उत्तरी कगार समुद्र था जो पौराणिक आख्यान की पुष्टि करता हुआ यह महाद्वीपीय विचलन के सिद्धान्त के पक्ष में एक वैज्ञानिक प्रमाण भी है। सलखन जीवाश्म सूक्ष्म समुद्री जीवों द्वारा तैयार किया गया माना जाता है और इसकी प्राचीन तिथि को देखते हुए महाद्वीपीय विचलन के वर्तमान सिद्धान्त के अनुसार यही माना जा सकता है कि उस काल में यह आस्ट्रेलिया से जुड़ा रहा होगा।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि किसी समय लगभग सारा उत्तर भारत समुद्र रहा होगा। इसके सम्बन्ध में महाभारत में कुछ कथानक आते हैं जिन्हें भारत के भूगर्भिक इतिहास का उल्लेख माना जाना चाहिए। महाभारत के वनपर्व (अ. १०४) में अगस्त्य की कथा आती है। इसमें उनके दो कार्यों का उल्लेख किया गया है। पहला यह कि उन्होंने विन्ध्य को और ऊंचा उठने से रोक दिया। कहा गया कि मेरु की प्रतिस्पर्धा में विन्ध्य ऊंचा उठने लगा था जिससे चिन्ता हुई। अगस्त्य से अनुरोध किया गया तो उन्होंने दक्षिण जाने का विचार किया और विन्ध्य पार करने लगे तो उसने झुककर प्रणाम किया। इस पर अगस्त्य ने कहा कि जब तक वह दक्षिण से वापस न आवें तब तक वह झुका रहे। यह भूगर्भिक घटना है जिसे प्रतीकात्मक रूप से वर्णित किया गया है। अगस्त्य नाम का तात्पर्य 'अग' अथवा पर्वत को स्थिर करने वाला।

इसके अगले अध्याय में दूसरी भूगर्भिक घटना हिमालय के दक्षिण और विन्ध्य के उत्तर में बन गए गर्त के जल को अगस्त्य द्वारा पी जाने की है। कहा गया कि पानी में कालेय दैत्यों के उपद्रव

को शान्त करने के लिए जब अगस्त्य जी से प्रार्थना की गई तो वे उसके जल को पी गए। लेकिन उनके मारे जाने के बाद जब उनसे जल को पुनः छोड़ने को कहा या तो उनका उत्तर था कि वह तो पच गया। अब कोई दूसरा उपाय करो। इसके बाद महाभारत में राजा सगर तथा उनकी पांच पीढ़ियों द्वारा गंगा जी को लाने के प्रयासों का वर्णन है। अन्त में कहा गया कि 'समुद्र को भरने के लिए ही गंगा पृथिवी पर उतारी गई थी।'[१४] इस कछारी भूमि में अनेक प्रकार के जीवांशों के अवशेष दबे हुए हैं। अवनीश चन्द्र दास ने किसी के हवाले से लिखा है कि ''शाकभक्षी, मांसभक्षी, कृन्तक तथा नरवानरगण एवं उन्नत स्तनपायियों के अवशेष '' इस भराव में दबे पड़े मिले हैं।

यह भराव हिमालय तथा विन्ध्य से निकलने वाली नदियों द्वारा लाए गए अवसाद से बना है। इस कार्य में लाखों करोड़ों वर्ष लगे होंगे और क्रमशः हुआ होगा। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या इस सम्बन्ध में भी कोई उल्लेख भारतीय साहित्य में है? तो इसका उत्तर सकारात्मक दिया जा सकता है। शतपथब्राह्मण[१५] में मधु पुत्र विदेघ की कथा आती है जिसका अब तक विद्वानों ने आर्यों के पूर्व की दिशा में प्रसार का प्रमाण बताया है लेकिन हम इस कथा को हिमालय के दक्षिण में स्थित गर्त से जोड़ कर देखना चाहते हैं। इसमें सरस्वती तट पर रहने वाले विदेघ माधव मुख से निकलकर वैश्वानर अग्नि इन क्षेत्रों को सुखाते हुए सदानीरा या गण्डकी नदी तक पहुंचती है। उसके आगे की दलदली भूमि भी अब कुछ सूखी चली थी और नदी पर करके विदेघ नहीं बसने का निर्णय करते हैं। इस प्रकार उस क्षेत्र का नाम विदेघ या विदेह पड़ा।

शिव तथा पर्वतोत्थान

हमारे शास्त्रों में अलग से पर्वतोत्थानशास्त्र का कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन अनेक प्राकृतिक घटनाओं के बारे में सूचना जिस प्रकार सांकेतिक कहानियों के माध्यम से दी गई है उनको जब हम वर्तमान वैज्ञानिक खोजों के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो लगता है कि हमारे पूर्वज उन विद्याओं के बारे में बहुत शोध कर चुके थे जिनको आज अलग-अलग विज्ञानों के नाम से जानते हैं। पर्वतोत्थानविद्या या Orogeny एक ऐसा ही विज्ञान जो पर्वतों के बारे में अत्यधिक विस्तृत जानकारियां संकलित कर रहा है। प्राचीन भारत में इस प्रकार का कोई प्रचलन नहीं था। हमारे वैज्ञानिक निरीक्षण के आधार पर प्राकृतिक घटनाओं को देखते थे और प्रतीकों में बांधकर इस प्रकार करते थे कि सभी लोग सरलता से हृदयंगम कर लें और श्रद्धापूर्वक आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरति करते रहें। इनका उद्देश्य मानव को सत्पथ पर चलते रहने के लिए प्रेरित करते रहना था जिसमें वे पूरी तरह सफल रहें। अब नए प्रकाश में लोगों की मानसिकता में परिवर्तन होता दिखाई पड़ रहा है।

पर्वतोत्थान विद्या के सम्बन्ध में शिव का स्मरण स्वभाविक है, क्योंकि शिव स्वयं हिमालय के प्रतीक माने गए हैं। आज शिव का जो स्वरूप जनसामान्य के बीच प्रचलित है वह एक अतिमानव जैसा है जिनकी पत्नी पार्वती देवी हैं तथा दो बच्चे, कार्तिकेय एवं गणेश हैं। इन सबके अपने-अपने भवन हैं। लेकिन एक खोजी की दृष्टि से देखने पर कहानी कुछ अलग ही दिखाई पड़ती है। शिव साक्षात् हिमालय है। उनकी जटाएं शिवालक (शिवालिक) कहलाती हैं। जो हिमालय के दक्षिण में काफी दूर तक पर्वत श्रेणियों के रूप में मैदानों तक फैली हुई हैं। स्वयं उनका निवास केलास (कैलाश

नहीं) है। जिसका अर्थ होता है वह स्थान जहां के अर्थात् 'जल' प्रभुत मात्रा में स्थित हो। कुछ और दक्षिण आने पर केदार (केद्वार) मिलेगा जहां से किसी समय हिमनद Glaciers नदी का रूप धारण कर मैदान में उतरते थे। यहां भी शिव का निवास माना जाता है। शिव के तीन प्रतीक हिमालय से सम्बन्ध हैं। उनके शिर पर या जटाओं में गंगा बहती हैं। हम उन नदियों का उल्लेख कर चुके हैं। जो केलास से निकलती है। उनमें दक्षिणी वाहिनी भागीरथी एक गंगा है। मीक्याङ्ग (माँगंगा) तथा याङ्गटिसिक्याङ्ग में भी गंगा नाम जुड़ा है। उनकी मौलि पर चन्द्र विराजमान हैं। चन्द्र का भी जल से ही सम्बन्ध हैं। त्रिपथगामिनी गंगा जब स्वर्ग या अन्तरिक्ष से उतरती हैं तो इन्दुमण्डल से होते हुए गिरती है।[१६] इस कारण चन्द्र भी शिव की मौलि पर सुशोभित बताया गया है। तीसरा प्रतीक कामदेव का कहा जाता है जिसको जल से सम्बन्ध मान सकते हैं। उसे शिव ने तीसरा नेत्र खोलकर भस्म कर दिया था। 'क' के अनेक अर्थों में जल भी माना गया है। जैसे कमण्डलु (जालपात्र), कमठ (जल का घड़ा) आदि होता है। केलास ओर केदार शब्दों में 'के' जल अर्थ में प्रयोग की बात हम कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त कहार नाम की एक जाति हिन्दुओं में होती है। जिसका शुद्ध रूप 'कोहार' अथवा जल का आहरण करने वाला या पानी भरने वाला होता है। ये घरों में पानी भरने तथा बर्तन मांजने का काम करते थे। ये कोहार या कुम्भ कार से भिन्न होते थे। वेदों में इस विश्व को अग्निसोमात्मक कहा गया है। अर्थात् जल और अग्नि दोनों ही इसमें अपना महत्त्व रखते हैं। शिवरुद्र, जिन्हें साक्षात् हिमालय माना जाता है, में जल एवं अग्नि का यह संयोग ध्यान देने योग्य है, क्योंकि वे कल्याणकारी होने के साथ कल्पान्तकारी भी है।

पार्वती को शिव की पत्नी कहा गया है। लेकिन वह उनकी दूसरी पत्नी है। पहली पत्नी उमा या समी मानी जाती हैं जिनका सम्बन्ध मेरु पर्वत से था। वे दक्ष की पुत्री मानी जाती है। उस कथा को पुनः कहने का कोई तात्पर्य नहीं है। केवल यह बता देना आवश्यक है कि शिव का प्रथम निवास मेरु पर ही था। मत्स्यपुराण[१७] के अनुसार मनुपुत्र इल जो मनु के बाद सुमेरु गिरि पर राज्य कर रहे थे अचानक शरवण में प्रविष्ट कर गए जहां शम्भु उमा के साथ क्रीड़ा कर रहे थे उनका लिङ्ग परिवर्तन हो गया। वे स्त्री बन गए। इस शरवण की पहचान हमने मध्य एशिया के जेरफशन से की है। कहानी के विस्तार में न जाकर मेरु को शिव के प्रथम काल से जोड़ कर देखना चाहिए। लेकिन जब से हिमालय अस्तित्व में आया तब से मां दुर्गा का तीसरा चरित प्रारम्भ होता है जिसमें पार्वती जी का स्पष्ट कार्य दिखाई पड़ता है।

जीव विकास में मातृशक्ति का योगदान

धरती पर जीवन के उद्भव एवं विकास के लिए मातृशक्ति के योगदान के लिए दुर्गा चरित का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके पहले चरित में तो मधु-कैटभ का संहार होता है। जिसमें मातृशक्ति का केवल इतना योगदान होता है कि वे योगनिद्रा में मग्न नारायण के शरीर से निकल जाती हैं और भगवान को स्वयं दैत्यों का नाश करना पड़ता है। मधु-कैटभ धरती पर जीवन के उद्भव के लिए वे प्रारम्भिक हानिकारक तत्त्व थे जो जल में उत्पन्न हो गए थे। दूसरे चरित में करोड़ो

वर्ष बाद मां दुर्गा ने स्वयं महिषासुर का विनाश किया। यह वह काल था जब पृथिवी पर मानव का आविर्भाव होने वाला था लेकिन सारी भूमि पर महिष छा गए थे। जिनका नाश होना मानव की उत्पत्ति के लिए आवश्यक था। हमने इनकी पहचान डायनासोर से की है जो चौदह करोड़ वर्ष पूर्व धरती की सबसे शक्तिशाली जीवन प्रजाति थी। इनके साथ विनता के पुत्र गरुड की भी शत्रुता थी। पुराजीवविज्ञानी बताते हैं कि इसी काल में अतिविशालकाय पक्षियों के भी अवशेष मिलते हैं लेकिन कम संख्या में। विनता तथा कद्रू की कथा को इससे जोड़ सकते हैं। महिष का वध करने के पहले उल्लेख है कि मां ने कहा कि 'तू गर्ज ले तब तक मैं मधु पीती हूं'। यहां पर मधु का अर्थ मदिरा नहीं है। यह सागर किनारे उत्पन्न होने वाले वे हानिकर जीवन-तत्व मालूम होते हैं जो जीव-विकास के लिए हानिकर थे। श्रीनारायण ने भी इनको नष्ट किया था, देवी को भी इन्हें नष्ट करना पड़ा। यह मरुभूमि के विस्तार से भी सम्बन्धित हो सकता है। जीव और बीज की भान्ति मरु ओर मुर भी समान अर्थ वाले परस्पर परिवर्तनीय शब्द हो सकते हैं।

कुछ उभरते प्रश्न

अब तक हमने जो चर्चा की है उसके निहितार्थ की ओर ध्यान देंगे तो कई पक्ष-प्रश्न सामने आ खड़े होते हैं। हम भारतीय महाद्वीप के आज के मानचित्र को ध्यान से देखें तो उसमें से उत्तर भारत के गंगा मैदान को निकाल दें और इसमें भी पूरे राजस्थान को निकाल दें जो कभी सारस्वत सागर था और अब थार मरुस्थल है। सरस्वती, शतुद्री तथा विपाशा नदियां इसी में गिरती थी। इसका यह अर्थ हुआ कि अरब सागर और बंगाल की खाड़ी, जिनके बीच में मनु का आर्यावर्त बसा हुआ है, एक दूसरे से मिले हुए थे। ऐसी स्थिति में कोई ऐसा समय था जब भारतीय पंजाब, पूरा पाकिस्तान और अफगानिस्तान एवं मध्य एशिया के कुछ क्षेत्र ही भूमिभाग थे। मध्य तथा उत्तरी एशिया का वह भाग वहां 'ब्लैकसी' 'कैस्पियन सी' तथा 'अराल सी' हैं वह भी नीची भूमि है, अर्थात् वहां सागर था। इसे 'सरमाटिक सी' कहा जाता है, जो नाम सरमा नामक किसी जनजाति के नाम पर रखा गया है। कैस्पियन नाम भी किसी कश्यप जनजाति के नाम पर रखा गया है ऐसा माना जाता है। ये दोनों ही पौराणिक नाम हैं। वहां अभी भी महाविस्तार वाले तीन मरुस्थल हैं जो सागर रहे होंगे। लेकिन जिस बात पर हम जोर देना चाहते हैं वह यह है कि आज जो भूमिराशि हमें यूरोप और एशिया के रूप में दिखाई पड़ रही है वह मनु के प्रलय के समय में अस्तित्व में नहीं रही होगी। धरती का चेहरा बदलता रहा है। महाद्वीपीय विचलन के सिद्धान्त के अनुसार प्राचीन युग में भूमि का संकेन्द्रण दक्षिणी ध्रुव पर था वह अब उत्तरी ध्रुव में हो गया है। प्रायः सभी महाद्वीपों के सबसे चौड़े भाग उत्तर दिशा में है तथा दक्षिणी हिस्से पतले दिखाई पड़ते हैं। यह धरती भूमात्रा के संकेन्द्रण की दिशा का ही संकेतक नहीं है वरन् उसकी गति का भी सूचक है।

वैदिक काल में भौगोलिक स्थिति भिन्न रही होगी, इसके प्रमाण स्वयं वेदों में ही मिलते हैं। आश्चर्य तब होता है जब हम देखते हैं कि हमारे इतिहासकार आर्यों के तथाकथित संप्रसार के लिए इसी भूगोल को लेकर परस्पर संघर्षशील दिखाई पड़ते हैं। वेदों में चार समुद्रों की चर्चा मिलती है जो

अभी हाल तक संस्कृत साहित्य में प्रचलन में था। वेदों में जिन लोगों का उल्लेख है वे चतुर समुद्र व्यवसाई जन थे। ऋग्वेद के लोग तीन मरुस्थलों आठ पर्वत शृंगों तथा सात सिन्धु या नदियों के देश को जानते थे। कुछ उल्लेखों के अनुसार सरस्वती तट पर कुरुक्षेत्र तक जो जानते थे तथा पूर्व की नदियों में केवल गंगा को जानते थे।[३८] लेकिन वे गंगा की घाटी में स्थित कोसल, काशी, विदेह तथा उसके पूर्व के भूभाग के बारे में नहीं जानते थे, शायद उस समय तक ये क्षेत्र अस्तित्व में ही नहीं थे। यदि हम ऋग्वेद के सूक्तों की रचना के कालविस्तार को ध्यान में रखें तो उनमें वर्णित भूगोल के अनेक स्तरों को मानना पड़ेगा जो हमारे भूगर्भिक सूचनाओं की पुष्टि करते दिखेंगे। इस पर आगे शोध करने की आवश्यकता है। मानव इतिहास की कालगणना की प्रचलित पाश्चात्य अवधारणा (दस हजार वर्ष) इस परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक ज्ञान के महासागर में एक बूंद से अधिक महत्त्व नहीं रखती। क्या यह बात मन्वन्तरों की विराट संख्याओं की पुष्टि करती नहीं दिखती?

दक्षिण की ओर देखें तो विन्ध्य के नीचे का भाग भी इतिहास में कहीं नहीं दिखाई पड़ता। जो हाल कोसल, काशी, मगध का है वही इस प्रायद्वीप का भी है लेकिन एक अपवाद के साथ। भूगर्भिक रूप में इसका अस्तित्व था। इसके साथ पर्वतों को कुलपर्वत कहा गया है, लेकिन मानव संभवतः तब तक यहां बसा नहीं था। सभी पुराकथाएं इसका श्रेय मनु को देती है जिस पर अविश्वास का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

ऐसे में हम सारस्वत-सैन्धव सभ्यता के पुरास्थलों की ओर एक बार फिर देखें जो गंगा के पश्चिम में बलूचिस्तान तक तथा उत्तर में शोर्तुघई (उत्तरी अफगानिस्तान) तक और दक्षिण में गुजरात तक ही मिलते हैं। इसे सारस्वत-सप्तसैन्धव सभ्यता का नाम दे सकते हैं। दूसरी ओर एन.बी.पी. तथा पंचमार्क्ड सिक्कों को देखें जो बिहार से लेकर तक्षशिला तक तथा दक्षिण में मैसूर तथा श्रीलंका तक मिलते हैं। इन्हें कोसल के केन्द्र से निःसृत मान सकते हैं। यह भी उतनी ही ऊर्जावान तथा शक्तिशाली सभ्यता थी जिसकी निरन्तरता आज तक बनी हुई है। इसे गंगाघाटी नाम दिया जा सकता है। वेदों एवं पुराणें के माध्यम से इसके सूत्र सारस्वत - सप्तसैन्धव सभ्यता से जुड़े हुए है। ऐसे में क्या हम इस बात पर विचार कर सकते हैं कि दोनों ही सभ्यताएं एक ही संस्कृति के दो पक्ष हैं जो इस पृथिवी पर अनेक भूगर्भिक उथल-पुथल के साक्षी हैं।

हमारे कुछ साथी विद्वानों को वैदिक सभ्यता के मध्य एशिया के सिद्धान्त से असहमति हो सकती है तथा वे यह भी कह सकते हैं कि इससे औपनिवेशिक विचारधारा वाले पाश्चात्य विद्वानों के पूर्व मतों की पुष्टि होती है। यही बातें पाश्चात्य विद्वानों ने गंगा की घाटी तथा सारस्वत-सैन्धव के बारे में भी कहा है। लेकिन स्पष्ट ही हमारी यह स्थापनाएं उनसे भिन्न हैं। हमारी खोजें जिस मार्ग का अनुसरण कर रही हैं वे औपनिवेशिक अवधारणाओं के विपरीत हैं। अतः हमें उनसे भयभीत होकर अपनी बात कहने से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। यदि वे इस बात की पुष्टि करते हैं तो हमें प्रसन्नता होनी चाहिए।

देश का नाम

इस विशाल चित्रपटल के परिप्रेक्ष में देखें तो एक अन्य विचित्र प्रश्न का सामना करना पड़ता

है। वह यह कि इस देश का नाम क्या था? इस पर तीन नाम हमारे सामने हैं – १. भारत, २. सिन्ध, जिससे ग्रीक इण्ड। फारसी हिन्द तथा चीनी शेन् तू नाम बनते हैं तथा ३. जम्बूद्वीप।

यद्यपि भारत के लिए पुराणों में कई भरतों के नाम आते हैं। जिनमें ऋषभपुत्र भरत तथा दौष्यन्ति भरत प्रमुख हैं। लेकिन यह नाम पूरे उपमहाद्वीप के लिए प्रयुक्त होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरी ओर अभिलेखिक प्रमाण यही कहते हैं कि खारवेल के समय यह केवल उत्तरभारत के लिए ही प्रयोग में लाया जाता है। कलिंग इससे बाहर था हिन्द या इण्ड भी केवल सिन्धुनद की सीमा अथवा उसके उस पार (पूर्व) के लोगों के लिए अस्पष्ट रूप से माना जाता है। सम्पूर्ण उपमहाद्वीप के लिए तो इसका उपयोग शायद कभी नहीं हुआ है।

जम्बूद्वीप शब्द की भी अपनी सीमाएं हैं। यह खोतान के राजाओं के अभिलेखों से लेकर अशोक तथा श्रीलंका तक के अभिलेखों में मिलता है। अतः यदि इसे मानें तथा पुराणों के विवरणों को स्वीकार करें तो सम्पूर्ण एशिया जम्बूद्वीप की परिभाषा के अन्तर्गत आ जाएगा। साथ ही इसके साथ द्वीप शब्द लगा हुआ है। जिसकी परिभाषा में न तो उपमहाद्वीप आता है तथा न ही एशिया। भूमात्रा की दृष्टि में दखें तो पूरा यूरोप और एशिया एक ही विराट महाद्वीप लगते है, यह अवश्य है कि यूरोपीय अहं के कारण नक्शों में दो महा (द्वीप) दिखाए जाते हैं। अतः इस प्रश्न पर ध्यान देने की आवश्यकता हे। उत्तर अब तक की चर्चा में खोज सकते हैं।

रामायण के समय की भूगर्भिक स्थिति

इस आलेख का समापन रामायणकाल की भूगर्भिक स्थिति पर चर्चा के साथ करना चाहते हैं। हमारी कालगणना के भूगर्भिक सन्दर्भ श्री राम की कथा में मिलते हैं जिनका काल पौराणिक गणना के अनुसार अब से लगभग एक करोड़ अस्सी लाख वर्ष पूर्व पड़ता है। यहां हम राम की कालगणना सम्बन्धी साहित्यिक उल्लेखों को छोड़कर उन भूगर्भवैज्ञानिक साक्ष्यों की चर्चा कर रहे हैं जिनका सन्दर्भ वाल्मीकिय रामायण में आता है। पाठकगण अपना मत स्वयं बनावें। वाल्मीकि रामायण में कम से कम तीन प्रसंग ऐसे आए हैं जिनमें आज की बंगाल की खाड़ी को दक्षिण समुद्र कहा गया है तथा बताया गया है कि महेन्द्र पर्वत, जहां से हनुमान ने लंका के लिए प्रयाण किया था वह दक्षिण समुद्र के तट पर था। आज यह उड़ीसा में समुद्र तट से तीस कि.मी. से अधिक दूरी पर स्थित है। इतना स्थल नदियों द्वारा लाए गए गाद से भरने के लिए कितना समय अपेक्षित होगा यह भूगर्भशास्त्री बता सकते हैं।

किष्किन्धा काण्ड में वानरदल सीता की खोज में एक गुफा में जाकर फंस जाता है। वहां उन्हें एक तपस्विनी मिलती है और उनसे गुफा के बाहर निकालने की प्रार्थना करते हैं। एक द्वार से गुफा के बाहर निकलकर तपस्विनी कहती है कि वह विन्ध्यगिरि है, वह प्रस्रवण शैल है तथा यह सागर है।

एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान् नानाद्रुमलतायुतः।।
एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः। रामा. ४/५२/३१-३२

एक प्रकार गुफा द्वार समुद्र तट पर खुलता था। यह गुफा विन्ध्य पर्वत का भाग थी और पास ही प्रस्रवण गिरि भी था। कम से कम ये तीनों स्थल एक दूसरे से इतनी दूरी पर थे कि अंगुलिनिर्देश पूर्वक इनको दिखाया जा सकता था।

दूसरा प्रसंग जटायु के भाई संपाती का है। वह बताता है कि उमंग में उड़ान भरते हुए वह इतना चला गया कि पंख झुलसने लगे और गर्मी में बेहोश होकर वह भूमि पर आ गिरा। गिरने के बाद जब उसे होश आया तो देखा कि निश्चय ही वह विन्ध्यपर्वत पर दक्षिण महोदधि के तट पर पड़ा है। वह कहता है –

दक्षिणस्योदधेस्तीरे विन्ध्योऽयमिति निश्चितः।। रामा. ४/६०/७

यहां दो बाते कहीं गई हैं। विन्ध्य पर्वत और दक्षिण समुद्र के तट एक साथ थे। आज विन्ध्य समुद्रतट से काफी दूर है, उसे पूर्वी समुद्र तट कहा जाता है।

तीसरा प्रसंग हनुमान के लंका से लौट कर वृत्तान्त देते समय आया है। वे कहते हैं कि मैं आप लोगों के सामने दक्षिण समुद्र पार करने की इच्छा से महेन्द्र पर्वत के शिखर से उड़ा था।

प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात् खमाप्लुतः।
उदधेर्दक्षिणं पारं कांक्षमाणः समाहितः।। रामा. ५/५८/८

यहां महेन्द्र पर्वत को दक्षिण समुद्र तट पर स्थित बताया गया है। हम यह देख चुके है कि उस समय आज की बंगाल की खाड़ी दक्षिण समुद्र थी।

इस प्रकार श्रीराम की कथा के समय की भौगोलिक स्थिति आज से बहुत भिन्न है। एक उल्लेखनीय बात है कि भूगर्भशास्त्रियों के मत से पूर्वी समुद्रतट जहां पट रहा है, वहीं पश्चिमी समुद्रतट कट रहा है। किसी समय गुजरात-कठियावाड़ का प्रायद्वीप भूभाग था। परशुराम की कथा तथा समुद्रकालीन बेटद्वारका इसके साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक प्रमाण माने जा सकते हैं।

फलश्रुति

विज्ञान द्वारा प्रतिपादत महाद्वीपीय विचलन का सिद्धान्त हमारे पौराणिक आख्यानों की पुष्टि करते हुए यह स्थापित करता है कि भारतीय महाद्वीप की मनु की वह नौका थी जिसको स्वयं भगवान विष्णु ने उत्तरगिरि या मेरुपर्वत पर लगाया था। यह नए मन्वन्तर का प्रारम्भ था तथा वैवस्वत मनु के रूप में मानव धरती पर जन्म ले चुका था। उस समय यह क्षेत्र (टाइथिस सागर में से उत्थित हो रहा था) मानव ही नहीं अन्य सभी जीवों के विकास के लिए सर्वाधिक उपयोगी स्थल था। यही स्थल वह एरियानो वेइजो है जिसके बारे में जेन्द अवेस्ता में कहा गया है कि इसका निर्माण अहुर मज्द ने किया था तथा सभी वनस्पतियां यहां उत्पन्न होती थीं। इस धरती पर अब तक के सबसे विकसित जीव मानव ने जन्म लिया और पृथिवी के इतिहास का सातवां अध्याय लिखा जाने लगा।

यह मानना उचित नहीं होगा कि विशाल पौराणिक साहित्य को आज के विदेशी इतिहासकारों को भ्रमित करने के लिए लिखा गया था। अतः इसे इतिहास न मानने का दुराग्रह छोड़कर इस दिशा में शोध करने की आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि सत्य है कि हमारे ही नहीं वरन् सारे संसार के प्राचीन इतिहास को विकृत करने का कार्य विगत दो-तीन शताब्दियों से चल रहा है तथा लाखों-लाख पृष्ठ लिखे जा चुके हैं। हम इसके प्रतिवाद में बहुत कुछ लिख रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि जब भी कोई दिशा में काम करना शुरु करता है तो प्रत्येक पद पर उनका सामना होता है और ऐसा लगने लगता है पहले इनका उत्तर दे दें तब आगे बढ़ा जाए। इस मानसिकता में अपनी बात

कहने से छूट जाती है और विवाद में उलझ जाना पड़ता है। लेकिन संयम बरतते हुए हम प्रतिवाद के चक्कर में न पड़ कर अपने पौराणिक इतिहास के सकारात्मक पक्ष को समाने रखें तो श्रम एवं समय दोनों की बचत होगी।

दूसरी बात यह है कि अपने पुराणों एवं महाकाव्यों को आधार बना कर प्राचीन ईरान, एशिया, मसोपोटामिया, मिस्र, ग्रीस ही नहीं वरन् अमेरिका के प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास पर भी काम किया जा सकता है। यह सब देखते हुए ऐसा लगता है इतिहास का महासागर लहरा रहा है और हम अभी उसमें गोता लगाने का उपक्रम भी कर रहे हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि जो भी यहां लिखा गया है उसे ज्यों का त्यों स्वीकार ही लिया जाए। आगे आने वाली पीढ़ियां इस दिशा में काम करके हमारे द्वारा की गई त्रुटियों को सुधारेंगी, इस आशा और विश्वास के साथ काम करते रहें।

सन्दर्भ :

१. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। मत्स्यपु. ३/३-४, वायु १/५४, मार्क. ४५/२०-२६. दे. पार्जिटर, एन्शियन्ट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, पृ. ३६.

२. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

३. पोद्दार वासुदेव, विश्व की कालयात्रा, कालपुरुष - इतिहासपुरुष, नई दिल्ली - २०००, पृ. २३१-३२.

४. अधिक जानकारी के लिए हमारा Science of Manavantars, Bangalore, २००६ देखें। वासुदेव पोद्दार की पुस्तक इस विषय के लिए अद्वितीय महत्त्व की है।

५. विष्णु पुराण, १/४/६

६. श्रीमद्भागवतपुराणा, ५/१७

७. वाल्मीकि रामायण १/४३

८. महाभारत, वनपर्व, अध्याय १०६

९. रामायण १/४३/१२-१५ पूर्व की ओर बहने वाली ह्लादिनी, पावनी और नलिनी (इनमें ब्रह्मपुत्र, मीक्याङ्ग या याङ्गत्येक्याङ्ग मान सकते हैं।) पश्चिम की ओर बहने वाली सुचक्षु, सीता और सिन्धु तथा दक्षिण की ओर भागीरथी हैं।

१०. Mathur, S.M. Physical Geology of India, १९९१, New Delhi, P. १८१ff.

११. Verma, T.P. & A.K. Singh; Inscriptions of the Gahadavalas and their Times, New Delhi , २०११, PP. ८७-८८.

१२. Das, A.C., Rgvedic Indian, 3rd Revised Edition, Delhi, १९७१, P. १८.

१३. Jaurnal of Earth System Science, Vol. ११५, Feb. २००६, PP. ६७-९८.

१४. 'पूरणार्थं समुद्रस्य पृथिवीमवतारिता' महाभारत, वनपर्व १०९/२०.

१५. शतपथ ब्रा. १/४/१/१०-१५

१६. भागवत पुराण ५/17/4.

१७. दे. मत्स्यपुराण, अध्याय 11.

१८. See R.S. Bishta 'Harappans and the Regveda : Points of Convergence, in the Dawn of Indian Civilization, Ed. G.C. Pandey, P. 394.

सिकन्दर चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन नहीं

कुञ्ज बिहारी जालान

यवन : शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय साहित्य में यथा पुराण तथा महाभारत एवं वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार आया है –

राजा ययाति के शाप से उनके द्वितीय पुत्र तुर्वसु म्लेच्छों के राजा हुए। (मत्स्य पुराण अ. ३३ श्लो. १२-१४)। यदु से यादव क्षत्रिय उत्पन्न हुए, तुर्वसु की सन्तान सीमान्त से लेकर यूनान तक के निवासी यवन कहलाई (मत्स्य पु. अ. ३५, श्लो. ३०)

यवन लोग भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर रहते थे। बाद में वहीं से यूनान व ग्रीस देशों को गए। उनकी भाषा संस्कृत से ही निकली है। सम्राट् मांधाता के काल में भी यवन विद्यमान थे। (भारतवर्ष का वृहद इतिहास, पृ. १६५), हरिवंश पुराण (अ. १४, श्लो. १२) के अनुसार सगर ने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवों को भी निःशेष करने का निश्चय किया। शक, यवन, काम्बोज, चोल, करल आदि ये सब क्षत्रिय ही थे। (हरिवंश, भागवत तथा विष्णु पुराण) मनुस्मृति (अ. १० श्लो. ४३-४४) में पौंड्रक, ओड्र द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, चीन आदि शुद्रत्व को प्राप्त हो गए। श्लो. ४३ में कहा गया है कि यवनादि क्षत्रिय जातियां क्रिया के (उपनयनादि) लोप होने से ब्राह्मण दर्शन न होने के कारण (अध्ययन आदि से वंचित) शूद्रत्व को प्राप्त हो गई।

रघुवंश महाकाव्य (कालिदास) में उल्लेख है कि राजा रघु ने अपने दिग्विजय अभियान पारस में जाकर यवानों पर विजय प्राप्त की। (सर्ग ४ श्लो. ६०-७८) (कलिकालीन भारत अ. १८ पृ. २२२-२४)

वाल्मीकि रामायण, बालकांड (सर्ग ५४ श्लो. २०-२३) तथा महाभारत (आदि पर्व अ. १७४ श्लो. ३६-३७) के अनुसार नन्दिनी ने योनिदेश से यवनों को प्रकट किया तथा उसके पार्श्वभाग से भी यवन जाति की उत्पत्ति हुई।

महाभारत : सम्राट, मांधाता ने कहा है कि मेरे राज्य में यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पल्लव, आन्ध्र, मद्रक, पौंड, पुलिन्द, रमठ और कम्बोज देशों के निवासी म्लेच्छगण सब और निवास करते हैं। (शान्ति पर्व अ. ६५ श्लो. १३-१५) भारत युद्ध काल में श्री कृष्ण ने कशेरूक यवन को मारा था। (वनपर्व अ. १२ श्लो. ३२)

युधिष्ठिर की सभा में एक उत्सव में एक यवनाधिपति उपस्थित था। (सभा पर्व - अ. ५, श्लो. २५)

दातामित्र या डेमेट्रिअस नाम यवनों में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी तुलना पाणिनीय दासमित्रि

और दासमित्रायण से करनी चाहिए। (गण पाठ ४-२-५४, १२३) दत्ता मित्र का नाम काशिका ४-२-७६ से मिलता है।

शिला लेख : नासिक गुफा संख्या १८ का शिलालेख – ओतराहस दाता मितिकयस्य। यहां ओतराह संस्कृत शब्द औतराह का उपभ्रंश है। (महाभाष्य ४-२-१०४ में वात्तिक)

इसमें यवन के लिए योनक रूप है। (पं. भगवदत्त-भारत वर्ष का वृहद् इतिहास भाग २, पृ. १६६)

भारतवर्ष में की तुर्वसु की सन्तान यवन कहलाई और अनु से म्लेच्छ जातियां उत्पन्न हुई। (आदि पर्व अ. ८५ श्लो. ३४) पाण्डवों की दिग्विजय के समय सहदेव ने इनके नगर को जीता था। (सभा पर्व का अ. ३१ श्लो. १२) नकुल ने भी यवनों को परास्त किया था। (सभा पर्व अ. ३२, श्लो. १७)

समुद्री टापुओं में रहने वाले – म्लेच्छ, किरात, यवन और शकों को जीतकर उनसे रत्नों की भेंट ली। इससे ज्ञात होता है कि यवनों की कोई शाखा दक्षिण में भी थी। जिसे दक्षिण विजय के समय सहदेव ने जीता था।

नकुल ने जिन यवनों को अपनी पश्चिम विजय के समय जीता था, यवनों का वह जनपद भारत के पश्चिम में था।

कर्ण ने भी यवनों को जीता था। (वन पर्व अ. २५४ श्लो. १८) काम्बोज राज सुदक्षिण यवनों साथ एक अक्षौहिणी सेना के साथ दुर्योधन के पास आया था (उद्योग अ. १९१, श्लो. २१-२२)। यवन एक भारतीय जनपद था। भीष्म पर्व में दक्षिण दिशा के यवन जनपद को बतलाया गया है। इसका नाम यवन, चीन, काम्बोज के साथ ही लिया गया है।

यवन पहले क्षत्रिय थे, परन्तु ब्राह्मणों से द्वेष रखने के कारण शूद्र भाव को प्राप्त हो गए। (अनु. पर्व अ. ३५ श्लो. १८)। महाभारत वन पर्व अ. १८८ श्लो. ३५ में भविष्य वाणी की गई है कि कलियुग के अन्तिम भाग में आंध्र, शक, पुलिन्द, यवन, काम्बोज, वाह्लिक तथा शौर्य सम्पन्न आभीर इस देश के राजा होंगे।

सरविलियम जोन्स : सर विलियम जोन्स ईस्ट इंडिया कम्पनी में एक न्यायाधीश थे। उन्होंने इ. स. १७८४ में कोलकाता (बंगाल) में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। इसका उद्देश्य एशिया के इतिहास, कला, शास्त्र और साहित्य का यथोचित अध्ययन करना था। जोन्स के संस्कृत शिक्षक पं. राधाकान्त थे। जोन्स को उनसे पता चला कि भागवत पुराणों में विश्व के निर्माण का अति प्राचीन काल दिया हुआ है। पुराणों के अनुसार ई. पू. ३००० के आसपास कलियुग के प्रारम्भ के ३६ वर्ष पूर्व भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना–महाभारत का युद्ध था।

भागवत पुराण में कलियुग के बहुत से राजवंशों का इतिहास, उनके समृद्धशाली राज्यों तथा उनके राज्य काल का वर्णन है। उसके आधार पर जोन्स ने ई. पू. ३१०१ से ४५२ ई. पू. तक मगध के

राजाओं की वंशावली १७८८ ई. में प्रकाशित करवाई। पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहास के कालक्रम के अध्ययन का यही प्रारम्भ है।

ई.स. १८-१९ वीं शताब्दी में ईसाइयों का दृढ़ विश्वास था कि सृष्टि का निर्माण ई. पू. ४००४ में २३ अक्टूबर को प्रातः ९ बजे हुआ। इस कारण इ. पू. ३००० वर्ष पहले महाभारत का युद्ध हुआ था यह तथ्य तथा भारत की प्राचीनता पर सर जोन्स कैसे विश्वास कर सकते थे? ईसाईमत के प्रभाव से अन्य ब्रिटिश लोग भी भारत के प्राचीन इतिहास की सत्यता पर विश्वास न कर सके। आर्थर ए. मेक्डोनेल ने यहां तक लिख डाला कि भारत में इतिहास घटा ही नहीं क्योंकि प्राचीन भारतीयों को ग्रीक, परियिन, रोमन जैसा जीवन कलह करना नहीं पड़ा। (भारतीय इतिहास शास्त्र कथा ले. श्रीराम साढ़े पृ. ५-७ तथा (कलिकालीन भारत पृ. २२१-३०)

मैंक्डोनेल को महाभारत काल में हुए दोनों पक्षों के भाइयों-पांडवों और कौरवों में हुआ भयंकर जीवन कलह दिखलाई नहीं पड़ा। भारत का प्राचीन इतिहास तो ऐसे अनेक कलहों और युद्धों से भरा पड़ा है। क्या इतिहास जीवन कलहों का ही होता है, कैसी थोथी दलील है यह?

इसी काल में जोन्स को ग्रीक और रोमन द्वारा दो-ढाई हजार वर्ष पहले के भारत के विषय में लिखा हुआ बुद्ध वृत्त मिला जिसमें मेसोडोनिया के राजा अलेक्झांडर के समय के क्रमशः तीन भारतीय राजाओं के नाम प्राप्त हुए। ये नाम थे – क्सैड्रेम्स, सैंड्रोकोट्टस और सैंड्रोसिप्टस्। सैंड्रोकोट्टेस पहले राजवंश के क्सैड्रेग्स को मारकर स्वयं राजा बना और सैंड्रोकोट्टस का पुत्र था सैड्रोसिप्टस। जोन्स ने इस तीन नामों में से एक सैंड्रोकोट्टस का नाम चुन लिया जो उच्चारण साम्य से उसे चन्द्रगुप्त प्रतीत हुआ। ग्रीक इतिहासकारों के अनुसार सैंड्रोकोट्टस की राजधानी पालिबोत्रा थी। जोन्स ने यह मान लिया कि मगध साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र का ही पालिबोत्रा ग्रीक उच्चारण है। दिनांक २८ फरवरी १७९३ को जोन्स ने प्रकट किया कि सैंड्रोकोट्टस ही पुराणों का चन्द्रगुप्त मौर्य है। इसके बाद २७ अप्रैल १७९४ को जोन्स की मृत्यु हो गई। शायद मृत्यु के पूर्व जोन्स को यह पता नहीं था कि पुराणों में कई चन्द्रगुप्त है। उनमें गुप्तवंश में ही दो चन्द्रगुप्त हैं।

प्रिन्सेप : ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक अन्य अधिकारी प्रिन्सेप ने ब्राह्मी लिपि पढ़ने का ज्ञान प्राप्त किया और प्रिय दर्शन के शिलालेख पढ़े।

टर्नर : श्रीलंका में कार्यरत कंपनी के एक अन्य अधिकारी टर्नर को सिलोन के प्राचीन इतिहास से जानकारी मिली कि प्रियदर्शन यह चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र का नाम है। ई. स. १८३८ ई. में प्रिन्सेप को अशोक के शिलालेखों में उसके समकालीन पांच यवन राजाओं के नाम प्राप्त हुए। जिनको उसने ग्रीस के पास पड़ोस के इ. पू. तीसरी शताब्दी के यवन राजाओं में ढूंढ निकला।

मूलाधार : ग्रीस ग्रन्थों के अनुसार पालिवोत्रा का सैंड्रोकोट्टस मेसाडोनिया के अलेकम्झांडर का समकालीन था। अलेक्झांडर का भारत पर आक्रमण इ. पू. ३२७ से ३२३ तक चला। इसी से चन्द्रगुपप्त मौर्य का काल साधारणतः निश्चित किया गया। प्रिन्सेप के अनुसार अशोक का काल इ. पू. तीसरी

शताब्दी आता है। इन दोनों का काल निर्णयों का मेल पुराणों में वर्णित मगध कार्यकाल से क्रमवार लगाया गया और चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण का वर्ष ई. पू. ३२० निश्चित किया गया। मैक्समूलर ने इ. स. १८५९ में इस निर्णय पर मुहर लगा दी और भारत के इतिहास के कालक्रम के लिए ब्रिटिशों ने वही वर्ष मूलाधार बनाया।

एम. ट्रायर सहमत नहीं : उस समय कम्पनी के एक अन्य अधिकारी एम ट्रायर इस निर्णय से सहमत नहीं थे और इन्होंने अपने कल्हणके राजतरंगिणी के भाषान्तर के परिचय में वह स्पष्ट लिखा। उन्होंने अपना विचार मैक्समूलर को भी वतलाया पर मैक्समूलर से उनको जवाब नहीं मिला।

व्ही.ए.स्मिथ : इसी को प्रमाण मान कर मगध पर मौर्यों के पहले और उसके बाद के राजवंशों के राज्यकाल को निश्चित किया। स्मारक लेख तथा मुद्रा शास्त्र की भी सहायता ली। पुराणों का भी आधार लिया। पुराणों में दिए गए नन्दों के बाद के राजवंशों का क्रम तो उन्होंने माना परन्तु उन राज्यों के राज्यकाल (Period) को कम कर भारतीय इतिहास के १३०० वर्षों को कम कर दिया। इस प्रकार मनमानी कर चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर का तालमेल बैठा दिया।

भारतीय इतिहासकारों ने स्पष्ट कहा है कि जोन्स से स्मिथ तक के ब्रिटिश अध्ययनकर्त्ताओं ने भारत के इतिहास के इस प्रकार १३०० वर्ष कम कर दिए। स्मिथ के बाद इसमें कुछ संशोधन नहीं हुआ। वही कालक्रम आज के स्वतन्त्र भारत में पढ़ाया जाता है।

पंडित भगवदत्त जी ने अपने ग्रन्थ भारत वर्ष का वृहद् इतिहास भाग १ पृ. २८८ से ३०४ तथा भाग २ पृ. २६५-२६८ में विस्तार से विचार किया है।

इसी प्रकार स्व. पं. इन्द्रनारायण जी द्विवेदी जी ने अपने लेख महाभारत संहिता और उसका रचना काल, महाभारत परिचय पुस्तक गीत प्रेस गोरखपुर सम्वत् २०१६ के पृ. १०९ से १३५ में सर विलियम जोन्स के वक्तव्य की परीक्षा (पृ. १२७-१३५) में इस पर विस्तार में प्रकाश डाला है। स्वतंत्र विचारक एवं शोधकर्ताओं के लिए यह पठनीय है।

नन्दों के बाद के राजाओं तथा उनके राजवंशों का पौराणिक राज्य काल नन्द

वंश कलि संवत् १५०१ से १६०१ इ. पू. १६०२ से १५०२ इनमें महाप अनन्द ने ८८ वर्ष राज्य किया।

इनके पुत्र सुमाल्यादि ८ पुत्रों का काल १२ वर्ष = १०० वर्ष (८८+१२)

मौर्यवंश	चन्द्रगुपत	- २४ वर्ष	
	विन्दुसार	- २५ वर्ष	
	अशोक	- २६ वर्ष	
इसी वंश के अन्य ७ और राजे		- ६२ वर्ष	
	योग	= १३७ वर्ष	ई. पू. १३६५ वर्ष
शुंगवंश १० राजे		- ११२ वर्ष	ई. पू. १२५३ वर्ष

कण्ववंश ४ राजे	- ४५ वर्ष	ई. पू. १२०८ वर्ष
आन्ध्रवंश ३० राजे	- ४५६ वर्ष	ई. पू. ७५२ वर्ष

यहां तक प्रत्येक वंश के प्रत्येक राजा का अलग-अलग राज्यकाल विभिन्न पुराणों में दिया गया है।

अब यदि यही तक विचार करे तो कम से कम चन्द्रगुप्त मौर्य और आन्ध्रंवंश के अंतिम राजा पुलोमा द्वितीय का राज्य काल मात्र ७ वर्ष ही था।

चन्द्रगुप्त मौर्य १६०१ कलि संवत् में मगध साम्राज्य की गद्दी पर बैठा अर्थात् १५०२ ई. पू. उसने २४ वर्ष राज्य किया। १५०२-२४ = १४७८ ई. पू.

इसमें से ७५२ घटाने पर १४७८-७५२ = ७२६ वर्ष का अन्तर स्पष्ट है। अर्थात् आन्ध्र वंश के अन्तिम राजा के ७२६ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन मगध पर था। ग्रीक ग्रन्थों के अनुसार ई. पू. ३२७ में ३२३ तक सिकन्दर का भारत पर आक्रमण हुआ। इसे मान लेने पर १४७८-३२३ = ११५५ वर्ष का अन्तर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। अर्थात् आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा पुलोमा द्वितीय के ७५२-३२७ = ४२५ वर्ष बाद सिकन्दर भारत की सीमा पर आया।

पौराणिक काल को कम करने का षड्यन्त्र 5 चन्द्रगुप्त मौर्य को सिकन्दर का समकालीन बतलाने के लिए पौराणिक कालखंड को इतिहास में कम कर लिखा गया।

सत्यकेतु विद्यालंकार डी.लिट् (पेरिस) (गोविन्दवल्लभ पंत, मोतीलाल नेहरू और मंगला प्रसाद पारितोषिक पुरस्कार प्राप्त) ने अपने ग्रन्थ भारत का प्राचीन इतिहास पृ. १२४-२५ पर लिखा है– परीक्षित के बाद की वंशावलियां पौराणिक अनुश्रुति में अधिक अविकल रूप से विद्यमान है। इन वंशावलियों में किस राजा ने कितने समय तक शासन किया, यह भी दिया गया है। यदि इन राजाओं के शासन काल की अवधि के आधार पर महाभारत युद्ध के काल को निश्चित किया जाए तो वह ३००० ई. पू. के लगभग बैठता है। पर विद्वानों ने विविध राजवंशों के राजाओं के शासन की अवधि का औसत निकालकर एक राजा का शासन काल सोलह वर्ष के लगभग निश्चित करना उचित समझा है। इसके अनुसार परीक्षित से महापद्म नन्द तक वे राजाओं का शासन काल औसतन १८ वर्ष ही माना जाए तो महाभारत युद्ध को १४२४ ई. पू. में रखना होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि यह तिथि क्रम सर्वथा निर्विवाद व सर्व सम्मत नहीं है।

पृ. ३२० पर विद्यालंकार जी लिखते हैं कि कुछ विद्वानों ने इस कल्पना विरुद्ध प्रबलता के साथ आन्दोलन किया। उन्हें यह मान्य नहीं था कि ग्रीक लेखकों का सण्ड्राकोट्टस और चन्द्रगुप्त मौर्य एक ही है। इन विद्वानों में श्री टी.एस. नारायण शास्त्री, श्री एम. के. आचार्य और श्री टी. सुब्बाराव प्रमुख थे। श्री नारायण शास्त्री ने इस पर विस्तार से विचार किया।

श्री नारायण शास्त्री ने १९१५ ई. में कलिराज वृत्तान्त लिखा। जोन्स की कल्पना में अनेक दोषों के सम्बन्ध में नारायण शास्त्री ने बतलाया कि चन्द्रगुप्त मौर्य की यह तिथि (३२२ ई. पू.) भारत

के सम्पूर्ण प्राचीन ऐतिहासिक इतिवृत के प्रतिकूल है। प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार यह तिथि १५३५ ई. पू. है। जिस समय जोन्स ने यह मत स्थित किया, उस समय तक केवल एक चन्द्रगुप्त का ही इतिहासकारों को पता था। परन्तु बाद में गुप्तवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त का भी पता चला। प्राचीन इतिवृत के अनुसार गुप्तवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त का काल ३२८ ई. से प्रारम्भ होता है, ग्रीक लेखकों के अन्य वृत्तान्त भी इसके साथ पूर्णतया मिलते हैं।

भारतीय इतिवृत्त के अनुसार आन्ध्रवंश के शासन के पूर्व भारत पर कोई विदेशी आक्रमण नहीं हुए।

भारतीय इतिवृत के अनुसार आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा चन्द्रश्री को हटाकर गुप्तवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त ने स्वयं राज्य प्राप्त किया। ग्रीक लेखकों के अनुसार सैण्ड्राकोहस ने वसैन्ड्रमस को मारकर राज्य प्राप्त किया। क्सैण्ड्रमस और चन्द्रश्री में ध्वनि साम्य स्पष्ट रूप से विद्यमान है। नन्दवंश में अन्तिम राजा धननन्द या नन्द के साथ के साथ क्सैण्ड्रमस का ध्वनि साम्य प्रतिपादित नहीं किया जा सकता।

कलियुग राजा वृत्तान्त के अनुसार आन्ध्रवंश का अन्तिम राजा चन्द्रश्री (चण्डश्री) था। इसके सेनापति का नाम चन्द्रगुप्त था। चन्द्रगुप्त ने चन्द्रवंश को मरवा दिया और उसके लड़के पुलोमान् का प्रतिभू (रीजेन्ट) बनकर वह स्वयं राज्य करने लगा। इसके बाद उसने पुलोमान् का भी वध करवा दिया और स्वयं राजा बन गया। (पृ. ३२०)

योरोपीय ज्योतिष बेली : योरोप के ही प्रसिद्ध ज्योतिषी बेली ने गणित करके कहा कि कलियुग के आदि में सब ग्रह एक ही युति के थे। उक्त घटना की जांच कर वे लिखते हैं कि कलियुग का आरम्भ ई. सन् ३१०२ वर्ष पूर्व २० फरवरी को २ बजकर २७ मिनट ३० सेकेण्ड पर हुआ था। उस समय समस्त ग्रह एक ही स्थान पर थे। (वैदिक सम्पति ले. पं. रघुनन्दन शर्मा पृ. ९६)

पुराणों का मत : मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराणों में भारतीय युद्ध के पश्चात् मगध पर राज्य करने वाले वंशों तथा उन वंशों के राजाओं का राज्य काल अलग-अलग विस्तार से दिया है। संक्षेप में हम अलग-अलग राजाओं का राज्यकाल न देकर उन राजवंशों का ही राज्यकाल देते हैं –

१. वृहद्रथ वंश के २२ राजाओं ने १००० वर्ष राज्य किया।
२. प्रद्योत वंश के ५ राजाओं ने १३८ वर्ष
३. शिशुनाक वंश के १० राजाओं ने ३६२ वर्ष
४. महापद्मनंन्द वंश १०० वर्ष
इनमें महापद्मनन्द अकेले ८८ वर्ष
समाल्यादि ८ या १२ पुत्रों ने १२ वर्ष
५. मौर्य वंश के १० राजाओं ने १३७ व

इनमें चन्द्रगुप्त का राज्यकाल २५ वर्ष था

इन सब का योगफल १०००+१३८+३६२+१००+१३७ = १७३७

६. शुंगवंश पुष्य आदि १० राजाओं का ११२ वर्ष

७. कण्ववंश ४ राजाओं का ४५ वर्ष

८. आन्ध्रवंश ३० राजाओं का ४५६ वर्ष

इस प्रकार १७३७+११२+४५+४५६=२३५० वर्ष

अब हमारे महागुरुओं (अंग्रेज) के हिसाब से देखें – वहद्रथ वंश के प्रथम राजा सोमाधि से लेकर आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा पुलामा द्वितीय तक ९३ राजाओं ने मगध पर शासन किया। यदि ९३X१८=१४८८ वर्ष। यह प्रत्येक राजा का राज्यकाल औसत १६ मानने से १४८८ वर्ष होता है। अब २३५०-१४८८ = ८६२ वर्ष। भारतीय पौराणिक कालगणना के हिसाब से कम हो जाते हैं।

यदि २३५०/९३ का औसत निकाले तो यह २५.२५ औसत प्रत्येक राजा का राज्यकाल होता है।

परन्तु प्रश्न उठता है कि जब हमारे पास प्रत्येक राजा का राज्यकाल सुरक्षित है तो हम क्यों औसत के चक्कर में पड़े। यही नहीं इसके अतिरिक्त भी हमारे पास इन्द्रप्रस्थ (पुराना किला दिल्ली) के राजाओं की वंशावली युधिष्ठिर से लेकर शहाबुद्दीन गौरी तक ही सुरक्षित है। जिसमें प्रत्येक राजा ने कितने वर्ष कितने महीने तथा कितने दिन तक राज्य किया, इसका पूरा-पूरा विवरण प्राप्त है। विवरण कलिकालीन भारत– ले. कुंज बिहारी जालान पृ. ५९-६७) इसी प्रकार कश्मीर के राजाओं का राज्य काल (पृ. ३९०) तथा गुर्जर (गुजरात) देश भूपावलि में (पृ. ३९५) प्रत्येक राजा का राज्यकाल अलग-अलग दिया गया है।

यदि इसी प्रकार १६ वर्ष राज्यकाल मान कर पीछे चलें तो वैवस्वत मनु (श्राद्धदेव या सत्यव्रत) तक जाते-जाते 'विशेष विवरण देखें हिन्दू इतिहास-सत्ययुग तथा त्रेताकालीन भारत' ले. कुंज बिहारी जालान पृ. ८३ से) ई. पू. ३००० तक जाता है। जबकि केवल महाभारत युद्ध काल ही ३१०२ ई. पू. है।

महाभारत के युद्ध से लेकर आज तक (२०१६ ई.) ५११५ वर्ष होते है। यही कलि संवत् ५११५ भी है। यही भारतीय ज्योतिषियों खगोल शास्त्रीय तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के शोध कर्ताओं को मान्य है।

सप्तर्षि सिद्धान्त : इतिहास के कालखण्ड को नापने के लिए एक ओर सूत्र हमारे प्राचीन साहित्य में दिया गया है वह है वृहद् काल मापक यन्त्र सप्तर्षि युग (मण्डल)। सप्तर्षि सात तारों का एक समूह है। आकाश में २७ नक्षत्र है। ये सप्तर्षि आकाश में प्रत्येक नक्षत्र पर सौ-सौ वर्ष रहता है। इस प्रकार ये २७०० वर्ष में एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र पर चलकर एक चक्कर पूरा करते हैं। इसे सप्तर्षि युग कहा गया है। विद्वान लोग समय (काल) की सही जांच के लिए इसका प्रयोग करते आए

हैं। अर्थात् काल- खण्ड को जांच ने की यह एक कसौटी है।

परीक्षित् के जन्म काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर अवस्थित थे। परीक्षित् के राज्य काल के समय भी सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर ही थे। श्री कृष्ण जब परमधाम को पधारे थे, उसी समय कलियुग का आगमन हुआ था। (विष्णु पु. अंश ४, अ. २४ श्लो. १०५-८)

परीक्षित के जन्म से नन्द के अभिषेक तक एक हजार पांच वर्ष का सौ समय हुआ था। (श्लो. १०४) एवं भागवत पु. स्कन्ध १२ अ. २ श्लो. २८, २९, इससे भी १५०१ कलिसंवत् में चन्द्रगुप्त मौर्य होना सिद्ध होता है।

ब्रह्माण्ड पुराण ३, अ. ७४ श्लो. २३५-३७ के अनुसार परीक्षित् जन्म से सप्तर्षि १०० वर्ष तक मघा नक्षत्र पर थे और आन्ध्रवंश के अन्त में मघा से २४ वे नक्षत्र पर थे। श्लो २३८ के अनुसार महापद्मनन्द के अभिषेक से आन्ध्रवंश के अन्त तक का अन्तर ८५० वर्ष कहा जाता है। इस अनुसार भी देखें तो कलि संवत् २३५ (आन्ध्रवंश के राज्यरोहण काल) का अन्तर ८५० वर्ष ही आता है। इन तथ्यों से भी इन वंशावलियों का काल सही सिद्ध होता है। इन्हीं तथ्यों के अनुसार स्पष्ट है कि सिकन्दर चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन नहीं था। सिकन्दर से लगभग साढ़े ग्यारह सौ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के शासक थे।

श्री कुंज वाटिका
गुदड़ी रोड़, सीतामढ़ी (बिहार)
पिन - ८४३३०२

लघु उद्योग भारती, हिमाचल प्रदेश

उद्योग हित, राष्ट्र हित

लघु उद्योग भारती, भारत का सबसे बड़ा सूक्ष्म, लघु व मध्यम उद्योगों क लिए समर्पित अखिल भारतीय संगठन है।

उद्योगों से सम्बन्धित सभी समस्याओं को दूर करने तथा सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए तत्पर संगठन।

आप भी इस संगठन के सदस्य बनें।

प्रधान : डॉ. विक्रम बिंदल 092185 59555

सचिव : राजीव कंसल 094180 87745

लघु उद्योग भारती, हिमाचल प्रदेश

151, डी.आई.सी. बद्दी, जिला सोलन (हि.प्र.) 173205

Email : lub.himachal@gmail.com

सरस्वती विद्या मन्दिर

AFFILIATION NO. 27525

बद्दी

SCHOOL CODE 200009

हिमाचल प्रदेश शिक्षा बोर्ड धर्मशाला से मान्यता प्राप्त

- Playway Teaching Method for Nur. Class
- Science & Computer Lab Facility
- DNT Lab Facility (Specially for 3rd to 8th class)
- Smart Class Room Facility
- Vedic Math Class Facility
- Student Participated for All Types of Competition
- Providing Merit From H.P. Board Since 1995
- Experience &Dedicated Staff

Smart School for Smart Students

AN INSTITUTION PROVIDING BEST EDUCATION AS WELL AS SANKARS

Contact No. 094186 72539, 094180 04927